गाडण सिवदास एवं खिड़िया जगा कृत

राजस्थानी वचनिकाएं

[साहित्यिक एवं भाषा वैज्ञानिक अध्ययन]

लेखक
आलमशाह खान
एम ए, रिसर्च स्कॉलर
हिन्दी विभाग
महाराणा भूपाल कॉलेज उदयपुर (राजस्थान)

•

भूमिका
महाराजकुमार डा रघुबीरसिंह
एम ए, एल एल बी, डि लिट्

प्रकाशक
राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम)
उदयपुर

प्रथम बार

मूल्य – ४ रु ७५ पैसे

सन् १९६४

भूमिका

मई १९६१ ई० में जब राजस्थान विश्वविद्यालय ने एम० ए० (हिन्दी) उत्तरार्द्ध परीक्षा के लिए लिखा गया श्री आलम शाह खान का शोध-लेख 'राजस्थानी की दो वचनिकाएं' परीक्षणार्थ मेरे पास भेजा तब मुझे कई नये अनुभव हुए। पीढ़ियों से राजस्थान में रहने के कारण लेखक को अहिन्दी भाषा भाषी तो नहीं कहा जा सकता है परन्तु राजस्थान के मुसलमान प्रायः खड़ी बोली ही अधिकतर बोलते-लिखते रहे हैं राजस्थानी अथवा डिंगल की ओर उन्होंने कभी विशेष ध्यान नहीं दिया। इस कारण आलम शाह खान को राजस्थानी और डिंगल की ओर यों आकर्षित हुआ देखकर कुछ कौतूहल हुआ। अपने साथी सह-संपादक पं० काशीराम शर्मा के सहयोग से खड़िया जगा की वचनिका का जो नया संस्करण तैयार किया गया था उसको प्रकाशित हुए तब चार-पांच माह भी नहीं बीते थे। अतः यह स्पष्ट था कि उसके प्रकाशन के लगभग यह शोध-लेख लिख लिया गया था। पुनः शिवदास गाडण कृत 'अचलदास खीची री वचनिका' तब भी अप्रकाशित ही थी। इन कारणों से भी मैं इस शोध-लेख को ध्यान पूर्वक पढ़ने को उत्सुक हो उठा।

इधर एम० ए० (उत्तरार्द्ध) परीक्षा या पी-एच० डी० डिग्री के लिये लिखे गये जो कई-एक शोध-ग्रंथ सामने आए हैं, उनमें प्रायः आधुनिक साहित्य के ही किसी सीमित पहलू विशेष का अध्ययन होता है। यदि किसी ने कभी मध्यकालीन साहित्य की ओर ध्यान दिया भी तो उस शोध-लेख में तद्विषयक साहित्य की ऊपरी-ऊपरी जानकारी का ही संकलन अधिकतर देखने को मिलता है। अतएव इस शोध-लेख में मध्यकालीन साहित्य के दो विख्यात ग्रंथों के इस सर्वांगीण अध्ययन की ओर मेरा विशेष ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक ही था।

अपनी विस्तृत प्रस्तावना में वचनिका साहित्य के आरंभ और विकास की पृष्ठ-भूमि प्रस्तुत करते हुए आलम शाह खान ने राजस्थानी गद्य के प्रभेदों और उनकी विभिन्नताओं पर भी प्रकाश डाला है। पुनः विक्रम की १९ वीं सदी में लिखी गई जैन वचनिकाओं का विवरण देकर इस शोध लेख में आलोचित दोनों वचनिकाओं के बीच की उल्लेखनीय कड़ियाँ भी प्रस्तुत कर दी हैं।

इस शोध-लेख को तैयार करने के लिये लेखक ने इन दोनों वचनिकाओं का सघन सहृदय अध्ययन किया है। इन वचनिकाओं में वर्णित घटनाओं की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि की अत्यावश्यक जानकारी प्राप्त कर वचनिकाओं में प्रस्तुत वस्तु-विवेचन तथा

चरित्र-चित्रणों की उसने उपयुक्त जांच की है। मूल ग्रंथों को ध्यानपूर्वक पढ़ कर उनको ठीक तरह समझने और उनका सही अर्थ निकालने का उसने पूरा-पूरा प्रयत्न किया है। पुनः इन दोनों वचनिकाओं के साहित्यिक समीक्षण के साथ ही उनका भाषा शास्त्रीय विवेचन भी लेखक ने किया है। अतः इस परीक्षा में [illegible] को प्रथम श्रेणी के अंक मिले थे।

इधर इस शोध-लेख की रचना के बाद जहाँ खिड़िया जगा कृत वचनिका का नया संस्करण सुलभ हुआ, वहाँ शिवदास चारण की वचनिका भी सादूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट बीकानेर, से प्रकाशित हो गई है। अतः प्रकाशनार्थ इस शोध-लेख का संशोधन करने में लेखक ने उनसे लाभ उठाया है। पुनः मूल शोध-लेख में रह गई छोटी मोटी त्रुटियों को भी दूर करने का उसने पूरा प्रयत्न किया है।

आज कई एक कारणों से राजस्थानी साहित्य का अध्ययन बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो गया है। इसके बिना मध्यकालीन राजस्थान का राजनैतिक इतिहास कदापि ठीक नहीं लिखा जा सकेगा। राजस्थान के तत्कालीन समाज और जन साधारण के जीवन की पूरी-पूरी सही जानकारी के लिये तो राजस्थानी साहित्य, और इसमें भी विशेषतया ख्यात-वार्ता साहित्य का गहरा अध्ययन सर्वथा अनिवार्य हो गया है। राजस्थान के मध्यकालीन इतिहास तथा समाज की अनेकानेक उलझी हुई अबूझ पहेलियों का सही हल इस प्रकार के अध्ययन से ही संभव हो सकेगा।

अतः यह देख कर विशेष प्रसन्नता हुई कि राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर इस शोध-लेख को प्रकाशित कर रही है। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि इस प्रकार उत्साहवर्धक सहयोग और प्रोत्साहन पाकर लेखक राजस्थानी साहित्य के अध्ययन में अधिकाधिक अग्रसर होकर भविष्य में तद्विषयक और भी महत्त्वपूर्ण उपयोगी साहित्य की रचना करता रहेगा।

रघुबीर निवास,
सीतामऊ (मालवा),
७ दिसम्बर, १९६१ ई०

रघुबीरसिंह

वक्तव्य

अचलदास खीची-री वचनिका और वचनिका रा० रतनसिंघजी री महेसदासोतरी' राजस्थानी की महत्त्वपूर्ण और लोकप्रिय रचनाएं हैं। विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध' में रचित 'अचलदास खीची री वचनिका' राजस्थानी के चारणी गद्य की सर्व प्रथम रचना है और विक्रम सं० १७१५ में रचित रतनसिंघ री वचनिका चारणी कलात्मक-गद्य की प्रौढ़ कृति है। साहित्य इतिहास और भाषा-विज्ञान तीनों ही दृष्टियों से राजस्थानी साहित्य में इन दोनों रचनाओं का विशेष महत्त्व है।

प्रस्तुत निबंध के अध्ययन का विषय ये ही दोनों वचनिकाएं हैं। हमने अपने अध्ययन को इन दोनों कृतियों के साहित्य सौन्दर्य के उद्घाटन और भाषा शास्त्रीय विवेचन तक ही सीमित रखा है।

राजस्थानी-गद्य की दृष्टि से दोनों वचनिकाएं अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हैं। अत प्रस्तावना' में संस्कृत से लेकर राजस्थानी तक के गद्य के विकास को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है साथ ही राजस्थानी गद्य के विभिन्न रूपों का परिचय देते हुए तुकांत गद्य के उद्भव को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

यह निबन्ध राजस्थानी भाषा के मर्मज्ञ विद्वान श्रद्धेय गुरुवर प्रो० नरोत्तमदास जी स्वामी के सामान्य निरीक्षण तथा आदरणीय प्रो० श्री कृष्णचन्द्रजी श्रोत्रिय के निर्देशन में लिखा गया है। निबन्ध प्रणयन में मेरे आदि गुरु श्री पुरुषोत्तमलालजी तिवारी और गुरुवर श्री रामकृष्णजी दूगड़ से मुझे बड़ी सहायता मिली है। तदर्थ मैं अपने इन गुरुजनों का आभारी हूं। श्रद्धेय मुनि श्री कांतिसागरजी ने भी समय-समय पर मार्ग-निर्देश करके और आवश्यक ग्रंथ जुटा कर मेरी सहायता की है। अतः मैं उनका भी उपकृत हूं।

निबन्ध के प्रणयन में जिन विद्वज्जनों के ग्रंथों से मैंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जो सहायता ली है उन सब के प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूं।

जिस समय यह निबन्ध लिखा गया था आलोच्य कृतियों पर कोई विशेष उल्लेखनीय कार्य नहीं हो पाया था। किन्तु अब अचलदास खीची री वचनिका' श्री दीनानाथ खत्री और 'रा० रतनसिंघ महेसदासोत री वचनिका' श्री काशीराम शर्मा एवं डा० रघुबीरसिंह द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हो चुकी हैं। वचनिकाओं के इन नव्य प्रकाशित संस्करणों के प्रकाश में निबन्ध में कतिपय आवश्यक संशोधन किये गये हैं। तदर्थ मैं इन विद्वानों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

इस निबन्ध के परीक्षक महाराज कुमार डा० रघुबीरसिंह रहे थे। उन्होंने अपने उदयपुर प्रवास के अवसर पर इसी निबन्ध के संदर्भ में मुझे याद किया और प्रथम साक्षात्कार में ही मेरा इतना उत्साहवर्धन किया कि मैं चकित रह गया। इस निबन्ध प्रणयन से जिस फल की मैंने आशा की थी वह तो सम्भव न हो सका किन्तु इसके माध्यम से एक महिम व्यक्तित्व की स्नेह-छाया मुझे अवश्य प्राप्त हो गई—और मैं इसीसे संतुष्ट हूं।

आदरणीय महाराज कुमार ने किंचित आग्रह मात्र से न केवल इस निबन्ध के लिए अपनी भूमिका लिख भेजी अपितु अत्यावश्यक ऐतिहासिक टिप्पण प्रदान कर कृतियों की ऐतिहासिक जांच को पुष्ट एवं सर्वांगपूर्ण बनाने में भी सहयोग दिया। उनके इस आग्रह के प्रति कोई औपचारिक बात कह कर मैं आभार-मुक्त होना नहीं चाहता।

राजस्थान साहित्य अकादमी के अध्यक्ष पं० जनार्दनराय नागर, संचालक डा० सोमनाथ गुप्ता और अन्यान्य सुहृद सदस्य महानुभावों का भी मैं आभारी हूं जिनकी सदाशयता के परिणामस्वरूप यह निबन्ध प्रकाशित हो सका है।

हिन्दी विभाग
महाराणा भूपाल कालेज
उदयपुर (राजस्थान)
२० दिसम्बर १९६१

आलम शाह खान

विषय – सूची

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक 'राजस्थानी वचनिकाएं' को श्री आलमशाह खान ने एम. ए. (हिन्दी) की परीक्षा के निमित्त शोध-निबन्ध (Dissertation) के रूप में हिन्दी, संस्कृत और राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के पण्डित आचार्य नरोत्तमदास स्वामी के निर्देशन में तैयार किया है।

प्रो० खान ने राजस्थानी साहित्य के विद्वानों की कतिपय सम्मतियों के आधार पर पुस्तक को प्रकाशन के लिये अंतिम रूप देने में भी बड़ा श्रम किया है। राजस्थानी साहित्य के शोध कार्य में उनकी विशेष रुचि है और आजकल वे महाकवि सूर्यमल्ल के विख्यात ग्रंथ 'वंश भास्कर' पर अपना शोध कार्य कर रहे हैं।

विषय प्रतिपादन और भाषा की दृष्टि से भी पुस्तक के महत्व को स्वीकार किया गया है।

आशा है सुधी पाठक इस पुस्तक का सम्मान करेंगे।

शांतिलाल भारद्वाज 'राकेश'
वास्ते निदेशक
राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम)
उदयपुर (राजस्थान)

प्रस्तावना

भारतीय वाङ्मय में गद्य के दर्शन सर्वप्रथम वैदिक संहिताओं में होते हैं। संस्कृत गद्य का प्राचीनतम रूप यजुर्वेद और अथर्ववेद में मिलता है। गद्यात्मक मंत्रोंका संग्रह प्रधानतया यजुर्वेद में है। वैदिक गद्य की यह परम्परा ब्राह्मणों आरण्यकों एवं उपनिषदों तक चली गई है। इसके अनन्तर सूत्र साहित्य का गद्य आता है। महाभारत और पुराणों में भी यत्र-तत्र गद्य का प्रयोग हुआ है। पुराणों में इस दृष्टि से भागवत पुराण और विष्णुपुराण उल्लेखनीय हैं। भागवत का गद्य प्राचीन शैली का है, उसमें प्राचीनता का पुट है। विष्णु-पुराण का गद्य अपेक्षाकृत सरल है।

(क) लौकिक संस्कृत का गद्य

पुराणों के पीछे के गद्य को चार विभागों में विभक्त किया जा सकता है—

१ शास्त्रीय-गद्य

२ नीति-कथाओं का गद्य

३ मनोरंजन कथा-साहित्य का गद्य और

४ साहित्यिक या कला-पूर्ण गद्य।

१ शास्त्रीय या वैचारिक गद्य भाष्यों, व्याख्याओं, टीकाओं और प्रबंधों के रूप में प्रयुक्त हुआ है। पतंजलि का महाभाष्य शंकर का वेदान्त-सूत्र भाष्य और शबर स्वामी का मीमांसा-भाष्य शास्त्रीय गद्य की सुन्दर रचनाएं हैं। आगे चल कर नैयायिकों के हाथों में पड़ कर यह गद्य क्लिष्ट और कृत्रिम हो गया है।

२ नीति कथाओं के गद्य की सब से प्रमुख रचना पंचतंत्र है। उसके अनेक रूपांतर भाषांतर बने। हितोपदेश पंचतंत्र का ही एक रूपांतर माना गया है। नीति कथाओं के गद्य के साथ साथ बीच बीच में पद्य भी पाया जाता है। बौद्ध जातकों के आधार पर रचित आर्यशूर के जातक-माला ग्रन्थ को भी इस कोटि में रखा जा सकता है, यद्यपि उसकी शैली अपेक्षाकृत कठिन है। मिथिला के सुप्रसिद्ध विद्यापति की 'पुरुष परीक्षा' भी इसी प्रकार की नीति-कथामय रचना है।

३ नीति-कथाओं से मिलता-जुलता मनोरंजक कथाओं का साहित्य है। ऐसी रचनाओं में विक्रम चरित्र सिंहासन-द्वात्रिंशिका या द्वात्रिंशत् पुत्तलिका, वेताल पंचविंशतिका, शुक सप्तति भोज-प्रबन्ध उल्लेखनीय हैं।

४ वैदिक काल से जो सीधा–सादा गद्य चला आ रहा था लौकिक संस्कृत में उसे अलंकृत करने की प्रवृत्ति आगई। अब गद्य में भी कला एवं कवित्व का संचार करके उसे पद्य का–सा ललित और रम्य बनाने का प्रयास किया जाने लगा। कालांतर में अलंकरण और कवित्व संस्कृत–गद्य में इतने प्रमुख एवं विशिष्ट बन गये कि उसे गद्य काव्य' की संज्ञा से अभिहित किया जाने लगा। गद्य लेखन को जो कवियों की कसौटी गद्य कवीनां निकषं वदन्ति' कहा गया है उसका कारण भी संस्कृत-गद्य की यही कला प्रधानता है। आचार्य वामन ने अपने काव्यालंकार-सूत्र में संस्कृत-गद्य के जो तीन भेद वृत्तगन्धि, चूर्णिका एवं उत्कलिका प्राय किये हैं उनका आधार भी संस्कृत गद्य की यही प्रवृत्ति है। *वृत्तगन्धि का लक्षण उन्होंने यह दिया है 'पद्यभागवद् वृत्तगन्धि'* [१ ३ २१] अर्थात् वृत्तगन्धि गद्य का वह रूप है जिसमें किसी पद्य या छंद के अंश विद्यमान रहते हैं। पातालतालुतल-वासिषु दानवेषु। इस उदाहरण में वसंततिलका छंद का अंश स्पष्ट लक्षित होता है। चूर्णक गद्य का वह रूप है जिसमें छोटे-छोटे समास और ललित पद-खण्ड हों। उत्कलिका प्राय चूर्णक के विपरीत प्रायः और उद्धत पद होता है अर्थात् *उसमें बड़े बड़े समास और कठोर पद होते हैं।*[1]

कलात्मक गद्य के दो भेद हैं—(१) आख्यायिका और (२) कथा। भामह और दण्डी ने अलंकृत गद्य-काव्य के लिए 'कथा' शब्द का प्रयोग किया है।[2] इस साहित्य की परम्परा बहुत प्राचीन है। कात्यायन ने आख्यायिका का उल्लेख किया है। पतंजलि के महाभाष्य में वासवदत्ता और सुमनोत्तरा नामक आख्यायिकाओं और भैमरथी नामक कथा का उल्लेख हुआ है। इनके अतिरिक्त वररुचिकृत चारुमति रामिल सौमिल कृत शूद्रक-कथा आदि कई एक कथाओं का उल्लेख मिलता है। परन्तु उक्त सभी कृतियों के केवल उल्लेख ही प्राप्त हुए हैं। कोई कृति अभी तक उपलब्ध नहीं हुई।

कलात्मक—गद्य के प्रारंभिक दर्शन रुद्रदामा के गिरनार शिला-लेख में होते हैं, जिसका समय संवत् २०७ के लगभग है। हरिषेण—कृत समुद्रगुप्त की प्रशस्तिः (लगभग संवत् ४१२) भी इस कलात्मक या अलंकृत गद्य का अच्छा उदाहरण उपस्थित करती है।

सुबन्धु की वासवदत्ता कथा कलात्मक गद्य की सर्व प्रथम उपलब्ध रचना है। सुबन्धु का समय संवत् ६८७ के लगभग है। संस्कृत गद्य के सर्वश्रेष्ठ लेखक बाणभट्ट हैं। उनकी दो रचनाएं प्रसिद्ध हैं—(१) हर्ष चरित् और (२) कादम्बरी। हर्षचरित आख्यायिका है और कादम्बरी कथा। कादम्बरी में संस्कृत गद्य अपने पूर्ण सौंदर्य को पहुंचा है।

१—व्याख्याकार आ॰ विश्वेश्वर : संपा॰ डा नगेन्द्र : हिन्दी काव्यालंकार सूत्र पृ॰ २०
२—डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ॰ ५७

दण्डी—(लगभग संवत् ७२७) कृत दशकुमार चरित एक मर्यादावादी आख्यायिका है जिसका गद्य व्यावहारिकता के निकट है।

उत्तरकालीन कृतियों में धनपालकृत तिलक मंजरी (दसवीं शताब्दी) वादीभसिंह-कृत गद्य चिन्तामणि (दसवीं शताब्दी) सोड्ढल-कृत उदयसुन्दरी-कथा आदि उल्लेखनीय हैं।

कलात्मक—गद्य का एक रूप चम्पू-काव्यों में मिलता है, जिसमें गद्य के साथ पद्य भी मिश्रित रहता है। चम्पू-काव्यों में सबसे प्राचीन त्रिविक्रम-भट्ट का नलचम्पू (दसवीं शताब्दी) है।

(ख) बौद्ध और जैनों का गद्य

महायानी बौद्धों ने भी संस्कृत गद्य को अपनाया और प्रचुर गद्य-साहित्य की रचना की। ललित-विस्तार अवदानशतक, जातकमाला आदि महत्वपूर्ण बौद्ध रचनाएं हैं। इनकी शैली साहित्यिक है जो स्थान-स्थान पर अलंकृत बन गई है। विशेष रूप से जातकमाला में काव्यत्व प्रधान है। इसमें चम्पू का पूर्व रूप देखा जा सकता है।

जैनों द्वारा लिखित संस्कृत-गद्य साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। जैन साहित्य विशेषतः कहानी प्रधान है। जैन गद्य-साहित्य का एक महत्वपूर्ण रूप जिसमें ऐतिहासिक अथवा अर्धऐतिहासिक व्यक्तियों के जीवन की घटनाओं का वर्णन होता है प्रबन्ध है। मेरुतुंग सूरि की प्रबंध चिंतामणि और राजशेखर का प्रबन्ध कोश जैनों की उल्लेखनीय कृतियां हैं।

(ग) संस्कृतेतर भाषाओं में गद्य

पालि—बौद्धों की धर्म भाषा पालि में प्रचुर गद्य-साहित्य रचा गया। साहित्य की दृष्टि से जातक-कथाओं का विशेष महत्व है।

प्राकृत—वुलनर ने पालि को छोड़कर प्राकृतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है।[1]

महाराष्ट्रीय।
शौरसेनी।
मागधी।
अर्ध मागधी।
जैन महाराष्ट्रीय।
जैन शौरसेनी।

इनमें से प्रथम तीन को नाटकीय प्राकृत और शेष तीन को जैन प्राकृत कहा गया है।

१—एल्फ्रेड सी वुलनर : इण्ट्रोडक्शन टु प्राकृत पृ० ४

इन सब प्राकृतों में शौरसैनी साधारणतया गद्य की प्राकृत थी। यद्यपि यदा-कदा इसके दर्शन पद्य में भी होते दिखाई पड़े किन्तु नाटकों के बाहर इसका प्रयोग बाद की अपेक्षा पहले अधिक था। जैनों ने महाराष्ट्री का प्रयोग कभी-कभी गद्य और पद्य दोनों में किया यद्यपि शौरसैनी गद्य के सामने महाराष्ट्री का गद्य नगण्य था।[१]

इस प्रकार यद्यपि प्राकृतों में प्रधानता पद्य की ही थी फिर भी उनमें गद्य का नितांत अभाव नहीं था। भामह और दण्डी द्वारा निर्दिष्ट कथा के लक्षणों को देखकर डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने विचार व्यक्त किया है कि 'भामह और दण्डी ने लक्षण को देखकर ही लक्षण बनाए होंगे। उनके अपने वक्तव्यों से ही स्पष्ट है कि वे प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में लिखे गये काव्यों से परिचित थे। इसलिए कथा लक्षण लिखते समय उनके सामने प्राकृत और संस्कृत की पुस्तकें अवश्य वर्तमान थीं।' आगे उन्होंने लिखा है कि— प्राकृत में लिखी कथाएं पद्य-बद्ध भी होती थी और गद्य में भी लिखी जाती थी। बृहद्-कथा (पैशाची प्राकृत में लिखित अप्राप्य ग्रंथ) के सम्बन्ध में कुछ निश्चित रूप से कहना कठिन है कि यह गद्य में लिखी गई थी या पद्य में परन्तु 'वसुदेव-हिण्डि' *नामक गद्य-निबद्ध प्राचीन प्राकृत कथा उपलब्ध हुई है जो यह सूचित करने के लिये* पर्याप्त है कि प्राकृत में गद्य-बद्ध कथाएं अवश्य लिखी जाती थी।[२]

अपभ्रंश—अपभ्रंश में पद्य-साहित्य का प्राय: अभाव है। पर लोक भाषाओं *के उदय के साथ गद्य का पुनः अभ्युदय होने लगा। प्रो० नरोत्तमदासजी स्वामी के* मतानुसार अपभ्रंश की गद्य-कृति कीर्तिलता (विद्यापतिकृत) लोकभाषाओं के उत्थान के बाद की रचना है जिसमें मैथिली का प्रभाव यत्र-तत्र दिखाई पड़ता है।

अपभ्रंश *गद्य की महत्वपूर्ण रचना कीर्तिलता ही है पर उद्योतन सूरि कृत* कुवलयमाला-कथा (वि सं० ८३५) और 'जगत्सुन्दरी प्रयोगमाला' (११वीं शताब्दी) नामक वैद्यक ग्रंथ में भी कहीं-कहीं अपभ्रंश-गद्य का प्रयोग मिलता है।

१— ...Courseni was normally the Prose Prakrit Though it appears to have been occasionally used in verse its employment in prose ont side the drama was probably once much wider than was later the case when the Jains used a form of Maharastri for prose as well as for verse though the presence of courseni forms in prose suggests that Maharastri is here intrasine "

(*Introduction A History of Sanskrit Literature—A B* Keith—Page 27)

२—डा हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ५७ ५६

आगे चल कर लोक-भाषाओं के उत्थान के साथ गद्य का जो स्वरूप निर्मित हुआ है उसमें धीरे-धीरे संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ता चला गया है। इस विषय में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि 'नवीं-दसवीं शताब्दी से ही बोलचाल की भाषा में तत्सम-शब्दों के प्रवेश के प्रमाण मिलने लगते हैं और १४वीं शताब्दी के आरंभ से तो तत्सम-शब्द निश्चित रूप से अधिक मात्रा में व्यवहृत होने लगे।'[१]

(घ) राजस्थानी भाषा में गद्य :

✓राजस्थानी का गद्य साहित्य बहुत प्राचीन है। १४वीं शताब्दी से आज तक राजस्थानी में गद्य-साहित्य की रचना होती आई है। यह जितना प्राचीन है उतना ही विस्तृत भी। राजस्थानी में सम्पूर्ण प्राप्त गद्य-साहित्य को २ प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है।

१ धार्मिक गद्य-साहित्य

राजस्थान का धार्मिक गद्य-साहित्य दो रूपों में मिलता है (क) जैन और (ख) पौराणिक। प्रथम में कथात्मक अंश अधिक है। पौराणिक गद्य अनुवाद रूप में अधिक मिलता है।

(क) जैन-धार्मिक-गद्य टीकाओं के रूप में भी मिलता है और स्वतन्त्र रूप में भी। टीकाएं दो रूपों में भी मिलती हैं—(१) बालावबोध और (२) टब्बा। बालावबोध का अभिप्राय सरल और सुबोध टीका से है। इसमें मूल की व्याख्या ही नहीं है अपितु मूल सिद्धान्तों को स्पष्ट करने वाली कथाएं भी होती हैं। ये बालावबोध सैकड़ों की संख्या में लिखे गये और लोकप्रिय भी हुए। टब्बा बालावबोध से बहुत संक्षिप्त होता है। इसमें मूल शब्द का अर्थ उसके ऊपर नीचे या पार्श्व में लिखा जाता है।

(ख) पौराणिक धार्मिक गद्य साहित्य पौराणिक ग्रंथ या उनके आधार पर लिखे गये रामायण महाभारत भागवत, बृहद्-कथा धर्म-शास्त्र कर्मकाण्ड, स्तोत्र आदि ग्रंथों के अनुवाद रूप में मिलता है। अधिकांश उपलब्ध अनुवाद १७ वीं शती के पीछे के हैं। प्राचीनता और विषयता दोनों ही दृष्टियों से जैनों की रचनाएं महत्वपूर्ण हैं।

२. ऐतिहासिक गद्य-साहित्य :

(क) जैन ऐतिहासिक गद्य—जैन विद्वानों ने ऐतिहासिक गद्य भी प्रचुर मात्रा में रचा है। वह मुख्यतः पट्टावली, वंशावली दफ्तर बही ऐतिहासिक-टिप्पण और उत्पत्ति ग्रंथ के रूप में मिलता है। पट्टावली में जैनाचार्यों की परम्परा का इतिहास रहता है, वंशावली में किसी जाति विशेष की वंश परम्परा का वर्णन होता है दफ्तर बही में

१—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० १८

समय समय के विहार और तीर्थादि की बातों को लिपि बद्ध किया जाता था, ऐतिहासिक टिप्पण में जैनाचार्य ऐतिहासिक विषयों को फुट-फुट रूप में लिखा करते थे और पट्टावलि ग्रंथों में किसी मत, गच्छ आदि की उत्पत्ति का इतिहास रहता है।

(ख) जैनेतर ऐतिहासिक गद्य—जैनेतर ऐतिहासिक गद्य भी अनेक रूपों में मिलता है। जिनमें से प्रमुख रूप निम्न लिखित हैं :—

१ ख्यात—डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार राजपूताने में 'ख्यात' ऐतिहासिक गद्य रचना को कहा जाता है।[1] ख्यात' में राजपूत राजाओं का इतिहास या प्रमुख घटनाओं का संकलन वंशक्रमानुसार या वर्ष क्रमानुसार रहता है नैणसी री ख्यात दयालदास री ख्यात, बांकीदास री ख्यात आदि राजस्थानी भाषा की महत्वपूर्ण गद्य रचनाएं हैं।

२ बात—राजस्थानी में 'बात' कथा या कहानी का पर्याय है। राजस्थानी की हजारों की संख्या में बातों की रचना हुई है। प्रो० नरोत्तमदासजी स्वामी के शब्दों में इन सब का संग्रह किया जाय तो न जाने कितने कथासरित् सागर या सहस्र रजनी चरित्र तैयार हो जायं।

३ पीढियावली—वंशावली—इनमें किसी वंश में होने वाले व्यक्तियों के नाम ही क्रमशः संग्रहीत होते है। कुछ पीढियावलियों में व्यक्ति के नाम के साथ उनके महत्वपूर्ण कार्य का भी उल्लेख किया गया है। राजवंशों के अतिरिक्त सेठ-साहूकारों सरदारों आदि की भी वंशावलियां मिलती है। उदाहरणार्थ 'राठौड़ां री वंशावली' 'बीकी भाटा रा राठौड़ां री पीढ़ियां' 'सीसोदियां री वंशावली जोधपुर री वंशावली' आदि।

४ हाल, अहवाल, हगीगत, यादवाश्त, तहकीकात आदि—इनमें घटनाओं का सविस्तार वर्णन रहता है। जैसे 'सांवता बीदियां सू जालणू लिया तैरी हाल' पातसाह औरंगजेब री हगीगत' 'राव जोधाजी मेवाड़िया री वार' आदि।

३ कथात्मक गद्य साहित्य

कथात्मक गद्य साहित्य के अन्तर्गत बात दवावैत वचनिका, वर्णक-ग्रंथ आदि हैं।

१ बात संस्कृत 'वार्ता'—से उत्पन्न है जिसका अर्थ कथा है। राजस्थान में 'बातें' बहुत प्राचीनकाल से कही सुनी जारही है। १७ वीं शताब्दी के अंत या १८ वीं शताब्दि के प्रारम्भ से राजस्थानी कथाओं को लिपि-बद्ध किये जाने के प्रमाण मिलते हैं।

२ वर्णक ग्रन्थों को वर्णन-कोष—कहना ही संगत होगा। इनमें नाना प्रकार के वर्णन आते हैं जैसे नगर-वर्णन विवाह-वर्णन भोज-वर्णन ऋतु वर्णन युद्ध-वर्णन

१—डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा – नेणसी की ख्यात भाग दो – भूमिका

मोहिल-मर्दन आदि। 'राजान राउत रो बात-बणाव', 'खीची गंगेव नींबावत रो दोपहरो', 'मुरलमानुप्रास', 'कुतूहल', 'सभा-शृंगार' आदि इसी प्रकार के ग्रन्थ हैं।

वचनिका और दवावैत पर आगे सविस्तार प्रकाश डाला जायेगा।

४ वैज्ञानिक गद्य-साहित्य

राजस्थानी गद्य में वैज्ञानिक साहित्य—या तो अनुवाद के रूप में मिलता है या टीका के रूप में। आयुर्वेद, ज्योतिष, शकुनावली, सामुद्रिक-शास्त्र, तंत्र-मंत्र आदि अनेक विषयों के संस्कृत ग्रंथों के राजस्थानी अनुवाद या इन्हीं के आधार पर लिखी हुई राजस्थानी गद्य की रचनाएं मिलती हैं।

५ अभिलेखीय गद्य साहित्य

इसके अन्तर्गत पत्रों और अभिलेखों में प्रयुक्त गद्य लिया जा सकता है। पत्रात्मक गद्य मुख्यतः राजकीय पत्र व्यवहार में उपलब्ध है। प्रशस्ति-लेख, शिला-लेख, ताम्र-पत्र आदि में संस्कृत का प्रयोग ही अधिक मिलता है पर उनमें राजस्थानी गद्य का भी प्रयोग हुआ है।

राजस्थानी गद्य का काल विभाजन

राजस्थानी गद्य-साहित्य के विकास क्रम को डा० शिवस्वरूप शर्मा ने अपने शोध-प्रबन्ध 'राजस्थानी गद्य साहित्य का विकास और इतिहास' में तीन कालों में विभाजित किया है। यथा—

प्राचीन काल

[क] प्रयास-काल—(सं० १३०० से सं० १४०० तक)

[ख] विकास-काल—(सं० १४०० से १६०० तक)

२ मध्य-काल—विकसित-काल (सं० १६०० से सं० १९५० तक)

३ आधुनिक-काल—(सं० १९५० से अब तक)

प्राचीनकाल

(क) प्रयास-काल—प्रयासकाल के राजस्थानी गद्य का महत्त्व उसकी प्राचीनता की दृष्टि से है। इस काल में गद्य-शैली में कई प्रयोग हुए जिनमें जैन विद्वानों का ही हाथ रहा। इस काल की प्रमुख रचनाएं ये हैं —

आराधना (सं० १३३०)
बाल-शिक्षा (सं० १३३६)
अतिचार (सं० १३४०)
नवकार व्याख्यान (सं० १३५८)
सर्वतीर्थ नमस्कार स्तवन (सं० १३५९)

अतिचार (सं० १३६६)
तत्व विचार प्रकरण (लगभग १४ वीं शताब्दी)
धनपाल कथा (लगभग १४ वीं शताब्दी)

अभिव्यक्ति प्रणाली शब्द संगठन वाक्य विन्यास एवं भाषा-स्वरूप की दृष्टि से राजस्थानी का यह प्रारम्भिक गद्य हिन्दी भाषा के विकास को समझने में पर्याप्त सहायता देता है।

(ख) विकास काल—यह राजस्थानी गद्य का प्रगति काल है। इस काल में गद्य एक निश्चित स्वरूप ग्रहण कर लेता है। प्रयास काल के प्रयोग अब समाप्त होगये। शैली में सुघड़पन आया और भाषा संयत एवं स्पष्ट होकर प्रवाहमयी बनने लगी। इससे पूर्व गद्य स्फुट और टिप्पणियों या बालावबोधों के रूप में ही मिला करता था, अब उसमें ग्रंथ रचना भी होने लगी। इस काल में भी जैनों ने ही प्रचुर गद्य कृतियों का निर्माण किया पर जैनेतर लेखकों का योगदान भी कम नहीं रहा। धार्मिक ऐतिहासिक कलात्मक और वैज्ञानिक सभी प्रकार की गद्य रचनाएं इस काल में रची गईं।

विकास-काल की प्रथम प्रौढ़ गद्य रचना आ० तरुण-प्रभसूरि कृत 'षडावश्यक बालावबोध' (सं० १४११) है। कलात्मक गद्य की प्रथम रचना माणिक्यचन्द्र सूरिकृत पृथ्वीचन्द्र चरित्र-अपर नाम 'वाग्विलास' (सं० १४७०) भी इसी काल की रचना है। चारणी कलात्मक-गद्य की प्रथम रचना शिवदास कृत 'अचलदास खीची री वचनिका' (सं० १४९०) भी इसी काल में मिलती है। जिन समुद्रसूरि और शांतिसागर सूरि की दो जैन वचनिकाएं जिनका उल्लेख आगे किया जायगा भी इसी काल में रची गईं। श्री जिनवर्धन सूरि कृत गुर्वावली (सं १४८२) इस काल की उपलब्ध जैनाचार्यों से सम्बन्धित एक ऐतिहासिक रचना है। इसकी भाषा अनुप्रासयुक्त प्रवाहमय एवं रंजनकारी है। कुल-मण्डन-कृत मुग्धावबोध औक्तिक (सं १४५०) इस काल का प्रमुख व्याकरण ग्रन्थ है। गणितसार (सं० १४४६) एवं गणपति विरचित बालावबोध (सं० १४७५) इस समय में वैज्ञानिक गद्य का सुन्दर स्वरूप प्रस्तुत करते हैं।

विकास-काल के अन्य प्रमुख गद्य लेखकों में सोम सुन्दर सूरि (सं० १४३०-१४९९) मेरुसुन्दर खरतरगच्छ (१६वीं शताब्दी का प्रारम्भ) और पार्श्वचन्द्र सूरि (सं० १५३७-१६१२) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन तीनों जैनाचार्यों ने पृथक-पृथक कई एक बालावबोधों की रचना कर राजस्थानी गद्य को एक निश्चित गति और विकास प्रदान किया।

२. मध्य-काल—विकसित-काल

विकसित-काल राजस्थानी गद्य के चरम उत्कर्ष का काल है। इस काल में भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित हुई शैली में निखार आया और यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों की

अभिव्यंजना का सामर्थ्य भी ग्रहण करने लगी। वचनिका और दवावैत गद्य शैलियों का विकास यहीं आकर हुआ। मौलिक टीका और अनुवाद तीनों रूपों में प्रचुरता के साथ गद्य रचनाएं होने लगीं, जिससे राजस्थान भारती का भण्डार इतना समृद्ध हो गया कि वह भारतीय लोक-भाषाओं के गद्य साहित्य के मध्य अपना पृथक और स्वतंत्र स्थान पाने का अधिकारी बन सके। अभिलेखीय या पत्रात्मक गद्य भी इस काल में प्रचुर मात्रा में लिखा गया।

✓ इस काल की सबसे महत्वपूर्ण रचना जगा खिड़िया कृत 'वचनिका' राठौड़ रतनसिंहजी री महेसदासोतरी (सं० १७१५) है। इसमें प्रयुक्त गद्य राजस्थानी-गद्य का सर्वोत्कृष्ट नमूना है। इस काल की अन्यान्य महत्वपूर्ण गद्य रचनाओं में 'कुतुबदीन साहजादे की वात' (१७वीं शताब्दी) 'राज रूपक' (सं० १७८८) १८वीं शताब्दी में रचित 'सभा-शृंगार', 'कुतुहलम', 'खींचीगंगेव नींबावत रो दो पहरो' राजान राउत रो वात वणाव आदि प्रमुख हैं। १७वीं शताब्दी के अंत या १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हमें 'दवावैत' संज्ञा से राजस्थानी गद्य-शैली के एक विशेष प्रकार के दर्शन होने लगते हैं। इस पर हम आगे यथा स्थान विचार करेंगे। कवि बख्तावर कृत 'केहर-प्रकाश' (सं० १९१६) और 'शिखर वंशोत्पत्ति' (२०वीं शताब्दी) भी विकसित काल की उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

३ आधुनिक-काल

आधुनिक काल में भी राजस्थानी की गद्य धारा अवरुद्ध नहीं हुई है। विकास काल के अंतिम चरण में गद्य-लेखन अवश्य शिथिल होगया था पर फिर से राजस्थानी गद्य नया मोड़ लेता हुआ दीख रहा है। नाटक उपन्यास कहानी, रेखा-चित्र आदि सभी साहित्यिक विधाओं का विकास होरहा है। हां, निबन्ध के क्षेत्र में वह अभी आगे नहीं बढ़ पाया है।

२ तुकान्त गद्य

(क) तुकान्त-गद्य

संस्कृत का गद्य-साहित्य अतुकान्त है। तुकान्त गद्य का आरंभ अपभ्रंश-काल से होता है। अपभ्रंश-काल में साहित्य पर लोक-काव्य का प्रभाव पड़ने लग गया था और लोक-काव्य गीतात्मक और तुकांत होता है। इसीलिए अपभ्रंश-साहित्य में तुक के प्रति इतना प्रबल आग्रह दीखता है। वस्तुतः तुक का विकास लोक-भाषाओं की गेय-परंपरा से हुआ और संस्कृत-साहित्य में जयदेव आदि के गीतों में ही यह अपवाद रूप में पाया जाता है।' [1]

अपभ्रंश-काव्य में लोक गीतों के आधार पर नवीन छंदों का प्रचलन हुआ। ये छंद संस्कृत-प्राकृत छंदों की भांति वर्णिक न होकर मात्रिक थे। साथ ही ये संस्कृत

१—हिन्दी साहित्य कोश पृ० १२५

अतिचार (सं० १३६९)

तत्त्व विचार प्रकरण (लगभग १४ वीं शताब्दी)

धनपाल कथा (लगभग १४ वीं शताब्दी)

अभिव्यक्ति प्रणाली, शब्द संगठन वाक्य विन्यास एवं भाषा-स्वरूप की दृष्टि से राजस्थानी का यह प्रारम्भिक गद्य हिन्दी भाषा के विकास को समझने में पर्याप्त सहायता देता है।

(ख) विकास काल—यह राजस्थानी गद्य का प्रगति काल है। इस काल में गद्य एक निश्चित स्वरूप ग्रहण कर लेता है। प्रभाव काल के प्रयोग अब समाप्त होगये। शैली में सुगठन आया और भाषा संयत एवं स्पष्ट होकर प्रवाहमयी बनने लगी। इससे पूर्व गद्य स्फुट और टिप्पणियों या बालावबोधों के रूप में ही लिखा गया था, अब उसमें ग्रंथ रचना भी होने लगी। इस काल में भी जैनों ने ही प्रचुर गद्य कृतियों का निर्माण किया पर जैनेतर लेखकों का योगदान भी कम नहीं रहा। धार्मिक, ऐतिहासिक कलात्मक और वैज्ञानिक सभी प्रकार की गद्य रचनाएं इस काल में रची गईं।

विकास-काल की प्रथम प्रौढ़ गद्य-रचना आ० तरुण-प्रभसूरि कृत षडावश्यक बालावबोध' (सं० १४११) है। कलात्मक गद्य की प्रथम रचना माणिक्यचन्द्र सूरिकृत पृथ्वीचन्द्र चरित्र-अपर नाम 'वाग्विलास' (सं० १४७०) भी इसी काल की रचना है। चारणी कलात्मक-गद्य की प्रथम रचना शिवदास कृत अचलदास खीची री वचनिका' (सं० १४६०) भी इसी काल में मिलती है। जिन समुद्रसूरि और शांतिसागर सूरि की दो जैन वचनिकाएं जिनका उल्लेख आगे किया जायगा भी इसी काल में रची गईं। श्री जिनवर्धन सूरि कृत गुर्वावली (सं० १४८२) इस काल की तपागच्छ जैनाचार्यों से सम्बन्धित एक ऐतिहासिक रचना है। इसकी भाषा अंत्यानुप्रासयुक्त, प्रवाहमय एवं रंजनकारी है। कुल-मण्डन-कृत मुग्धावबोध औक्तिक (सं १४५०) इस काल का प्रमुख व्याकरण ग्रंथ है। गणितसार (सं० १४९६) एवं गणपति विरचित बालावबोध (सं० १४७२) इस समय में वैज्ञानिक गद्य का सुन्दर स्वरूप प्रस्तुत करते हैं।

विकास-काल के अन्य प्रमुख गद्य लेखकों में सोम सुन्दर सूरि (सं० १४३०-१४९९) मेरुसुन्दर खरतरगच्छ (१६वीं शताब्दी का प्रारम्भ) और पार्श्वचन्द्र सूरि (सं० १५३७-१६१२) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन तीनों जैनाचार्यों ने पृथक्-पृथक् कई एक बालावबोधों की रचना कर राजस्थानी गद्य को एक निश्चित गति और विकास प्रदान किया।

२. मध्य-काल—विकसित-काल

विकसित-काल राजस्थानी गद्य के चरम उत्कर्ष का काल है। इस काल में भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित हुई शैली में निखार आया और वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों की

अभिव्यंजना का सामर्थ्य भी ग्रहण करने लगी। वचनिका और दवावैत गद्य शैलियों का विकास यहीं आकर हुआ। मौलिक टीका और अनुवाद तीनों रूपों में पद्य के साथ गद्य रचनाएं होने लगीं जिससे राजस्थान भारती का भण्डार इतना समृद्ध हो गया कि वह भारतीय लोक-भाषाओं के गद्य साहित्य के मध्य अपना पृथक और स्वतंत्र स्थान पाने का अधिकारी बन सके। अभिलेखीय या पत्रात्मक गद्य भी इस काल में प्रचुर मात्रा में लिखा गया।

✓ इस काल की सबसे महत्वपूर्ण रचना खिड़िया जगा कृत 'वचनिका राठौड़ रतनसिंहजी री महेसदासोतरी' (सं० १७१५) है। इसमें प्रयुक्त गद्य राजस्थानी-गद्य का सर्वोत्कृष्ट नमूना है। इस काल की अन्यान्य महत्वपूर्ण गद्य रचनाओं में 'कुतुबदीन सहजादे की वात' (१७वीं शताब्दी), 'राज रूपक' (सं० १७८८) १८वीं शताब्दी में रचित 'सभा-शृंगार' 'कुतुहलम्' 'खीचीगंगेव नींबावत रो दो पहरो' 'राजान राउत रो वात वणाव' आदि प्रमुख हैं। १७वीं शताब्दी के अंत या १८वीं शताब्दी के आरम्भ में हमें 'दवावैत' संज्ञा से राजस्थानी गद्य-शैली के एक विशेष प्रकार के दर्शन होने लगते हैं। इस पर हम आगे यथा स्थान विचार करेंगे। कवि बख्तावर कृत 'केहर-प्रकाश' (सं० १९१९) और 'शिखर वंशोत्पत्ति' (२०वीं शताब्दी) भी विकसित काल की उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

३ आधुनिक-काल

आधुनिक काल में भी राजस्थानी की गद्य धारा अवरुद्ध नहीं हुई है। विकास काल के अंतिम चरण में गद्य-लेखन अवश्य शिथिल होगया था अब फिर से राजस्थानी गद्य नया मोड़ लेता हुआ दीख रहा है। नाटक, उपन्यास कहानी, रेखा-चित्र आदि सभी साहित्यिक विधाओं का विकास होरहा है। हां, निबन्ध के क्षेत्र में वह अभी आगे नहीं बढ़ पाया है।

२ तुकान्त गद्य

(क) तुकान्त-पद्य

संस्कृत का पद्य-साहित्य अतुकान्त है। तुकान्त पद्य का प्रारंभ अपभ्रंश-काल से होता है। अपभ्रंश-काल में साहित्य पर लोक-काव्य का प्रभाव पड़ने लग गया था और लोक-काव्य गीतात्मक और सतुकांत होता है। इसलिए अपभ्रंश-साहित्य में तुक के प्रति इतना प्रबल आग्रह दीखता है। वस्तुतः तुक का विकास लोक-भाषाओं की गेय-परंपरा से हुआ और संस्कृत-साहित्य में जयदेव आदि के गीतों मे ही वह अपवाद रूप में पाया जाता है।[1]

अपभ्रंश-काव्य में लोक गीतों के आधार पर नवीन छंदों का आगम हुआ। ये छंद संस्कृत-प्राकृत छंदों की भांति वर्णिक न होकर मात्रिक थे। साथ ही ये संस्कृत

१—हिन्दी साहित्य कोश पृ० १२५

प्राकृत के आर्या गाथा आदि मात्रिक छंदों से भी भिन्न प्रकार के और तुकांत भी आगे चल कर तुक-निर्वाह का प्रचलन इतना बढ़ गया कि अपभ्रंश के रचयिताओं ने संस्कृत के वर्णिक छंदों में भी तुक का प्रयोग किया।

जिस प्रकार गाहा प्राकृत का प्रिय छंद रहा है उसी प्रकार 'दूहा' अपभ्रंश का प्रसिद्ध एवं व्यापक छंद है। यह छंद (दूहा) नवीं-दसवीं शताब्दी में बहुत लोकप्रिय होगया था। इस छंद में नई बात यह है कि इसमें तुक मिलाये जाते हैं। संस्कृत प्राकृत में तुक मिलाने की प्रथा नहीं थी। दोहा वह पहला छंद है जिसमें तुक मिलाने का प्रयत्न हुआ और आगे चल कर एक भी ऐसी अपभ्रंश-कविता नहीं लिखी गई जिसमें तुक मिलाने की प्रथा न हो। इस प्रकार अपभ्रंश-कविता एक नवीन छंद लेकर ही नहीं आई बिलकुल नवीन कारीगरी लेकर भी आविर्भूत हुई।[1]

(ख) तुकान्त-गद्य

दूहे के इस व्यापक प्रचार और तुक मिलाने की कारीगरी ने अपभ्रंश गद्य में भी प्रवेश किया और धीरे-धीरे अलंकृत अथवा काव्यात्मक गद्य में तुक का प्रयोग अलंकरण के रूप में होने लगा। यथा—

'छोड़ छत्तीस अवर परिवार राज भोग परिहरिय चउरंग परिजन विमुक्कय बलगि पाये पम्मथिय जम्मभूमि को मोह छोडिय धनि छोड़िय।'[2]

(ग) राजस्थानी तुकान्त-गद्य

राजस्थानी साहित्य में हमें दो प्रकार का गद्य मिलता है—साधारण बोलचाल का सीधा-सादा गद्य और अंत्यानुप्रासयुक्त कलात्मक-गद्य। राजस्थानी गद्य परंपरा में अंत्यानुप्रास युक्त अथवा तुकान्त-गद्य के रूप वचनिका वार्ता (वारता) दवावैत आदि नामों से मिलते हैं। दवावैत को छोड़ कर वचनिका बात आदि के प्रयोग पृथ्वीराज रासो में भी हुए हैं।

वचनिका और दवावैत

राजस्थानी के प्रसिद्ध रीति-ग्रंथ 'रघुनाथ रूपक' में गद्य के दो प्रकार—१ वचनिका और २ दवावैत—बताये गये हैं। इन दोनों के भी पृथक-पृथक दो-दो भेद किये गये हैं। यथा—

१ वचनिका के भेद

दोय भेद वचनका रा एक पद बंध दूजी गद बंध सू गद बंध दोय भेद एक तो वारता दूजी वारता में मोहरा राखणो। दोय भेद पद बंध

१—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० ६७

२—संपा० डा० बाबूराम सक्सेना — कीर्तिलता पृ० २२

वचनका है एक तो आठ मात्रा रो पद हुवै, दूजो पद बंध में बीस मात्रा रो पद बंध हुवै ।[1]

(क) गद्यबंध (गद्यमय) जिसमें मात्राओं का नियम न हो ।

और (ख) पद्यबंध (पद्यबंध) जिसमें मात्राओं का नियम हो ।

इन दोनों वचनिका भेदों के भी दो पृथक्-पृथक् दो प्रकार हैं । यथा

१ अतुकांत या साधारण गद्य अपर नाम वारता ।

२ तुकांत गद्य (मात्रा का नियम नहीं) । यथा—

तिण सभा में श्री मुखवाणी, जिकणसुणी तारीफ मारणी ।
माठो साच ही जाण पाई इण बस रावणरी सीता ने सीता पाई ।

(ख) पद्य बंध वचनिका

१ जिसमें आठ-आठ मात्राओं के तुकांत शब्द-समूह या पद्य-खण्ड हों । यथा—

श्री विश्राम, रघुवर विसाल, दर्पं दबर मुण मरण सूर,
हणमंत एह इण मुण मलेह सेना सुसैन, किनी कपैत ।
मै मधू मैण सुण विमल सेंया पंचवटी प्रीत पहुंचो सु चैत,
उण हाम माम भगवाण पाम भासुर भामीत, तिण हरी सीत ।

२ जिसमें बीस-बीस मात्राओं के तुकांत शब्द या पद्य-खण्ड हों । यथा—

बोले सीतापति इसड़ी श्री बाणी सुरनर नामो मैं बणै सुहाणी ।
सेनाभम हणमंत जिम ही सरसाई वीरां बंकड़ी कीधी बडाई ।।[2]

२. दवावैत के भेद :

'दवै भेद कवि कहै तिके दवावैत विध होय ।
एक सुधबंध होत है, एक गद्यबन्ध होय ।।[3]"

उपर्युक्त लक्षण देने के बाद रघुनाथ रूपक कार ने आगे कहा है—

"होय दो दवावैत । जिण में गद्यबंध दवावैत में मात्रा रो नेम नहीं ने पद्यबंध में २४ मात्रा री पद में प्रमाण हुवै ।'

इस विवेचन के अनुसार दवावैत के दो भेद निर्धारित होते हैं—

१—टिप्पणी-मुद्रित 'रघुनाथ रूपक' में गद्य बंध के स्थान पद्यबंध और पद्यबंध के स्थान पर गद्यबंध है । यह उलट फेर हस्तलिखित प्रतियों में लेखक प्रमाद से हो गया जान पड़ता है । श्री अगरचंद नाहटा ने भी राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मंदिर द्वारा प्रकाशित 'राजस्थानी साहित्य संग्रह' भाग १ में 'राजस्थानी गद्य काव्य परम्परा' शीर्षक लेख में इसी बात को माना है ।

१ गद्दबंध (गद्यबंध)—जिसमें तुकांत गद्य खण्ड होते हैं, मात्राओं का नियम नहीं होता। यथा—

'प्रथम ही अयोध्या नगर जिसका बखाण
बारे जोजन तो चौड़े सोले जोजन के फिराव
चौतरफ के फैलाव चौसठ जोजन के फिराव
जिसके तले सरिता सुरित के घाट
मनु उज्जवल सु बहे चौसर कोसों के पाट।'

२ पद्दबंध (पद्यबंध)—जिसमें २४–२४ मात्राओं के खण्ड-समूह का गद्य-खण्ड होते हैं। यथा—

हाथियों के हलके कंसू भराते चोले अरापत के साथी ऐरावति के होले। मद हेतु के दिग्गज विन्ध्याचल के कुथान रंग रंग दिये सुन्दर अंग के बखाण। झूल की झलक और फूल के झपके बादलों की चमचमाती मेरे मोरों की भाँति मंगके। कनक कलसु के संपर भारी कनक की हूँस बजाहर के चेहर दीपमाला की बस।

वचनिका और दवावैत में अन्तर

रघुनाथ रूपक कार द्वारा दिये गये पद्दबंध दवावैत के उपर्युक्त उदाहरण के प्रत्येक गद्य-खण्ड में नियमानुसार २४–२४ मात्राओं के समरण का निर्वाह नहीं हुआ है उसमें मात्राएं कम ज्यादा हैं। इसी प्रकार पद्दबंध वचनिका के दूसरे भेद और दवावैत के पहले भेद गद्दबंध में भी कोई अंतर परिलक्षित नहीं होता। ऐसी स्थिति मे वचनिका और दवावैत के अंतर को बताना बड़ा कठिन है। इसलिए श्री अगरचन्द नाहटा ने लिखा है कि दवावैत और वचनिका में क्या अंतर है ? यह अभी तक समझ में नहीं आया है।[1] 'रघुनाथ रूपक' के टीकाकार श्री महताबचन्द खारेड़ के मतानुसार वचनिकाएं दवावैत के ही भेद मालूम होती हैं। इतना-सा भेद मालूम होता है कि वचनिका कुछ लम्बी और विस्तृत होती है और गद्दबंध में तो कई छंदों के छोटे अर्थात् गुम्फ वचनिका रूप में जुड़ते चले जाते हैं।

श्री खारेड़ की यह धारणा उचित नहीं है कि वचनिकाएं दवावैत के ही भेद हैं। क्योंकि वचनिका रचने की परंपरा दवावैत रचना परंपरा से काफी प्राचीन है। सबसे प्राचीन उपलब्ध वचनिका शिवदासकृत अचलदास खीची री वचनिका है जिसकी रचना सं० १४८० के आसपास हुई थी जबकि उपलब्ध दवावैतो मे सबसे प्राचीन नरसिंहदास गौड़ की दवावैत' है जिसका रचना-काल नाहटाजी ने १७वीं शताब्दी का

१—श्री अगरचन्द नाहटा—राजस्थानी गद्य-काव्य की परम्परा शीर्षक लेख।

अंत या १८वीं शताब्दी का प्रारम्भ बताया है।[1] ऐसी स्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि वचनिका दवावैत का ही एक प्रकार या भेद है। वचनिका और दवावैत में मुख्य भेद भाषा संबंधी है। उपलब्ध दवावैतों के स्वरूप-निरीक्षण से ज्ञात होता है कि उन पर निश्चित रूप से उर्दू-फारसी गद्य-शैली का प्रभाव है। श्री नाहटाजी का भी यह मत है कि इसकी (दवावैत की) परंपरा अरबी फारसी से संबंधित है।[2] यद्यपि वचनिकाओं में-विशेष कर बाद की रचनाओं में भी उर्दू-फारसी के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। पर वे उर्दू-फारसी गद्य शैली के प्रभाव से मुक्त हैं। प्रो० नरोत्तमदास स्वामी भी वचनिका और दवावैत में भाषा-संबंधी अंतर को ही मुख्य मानते हैं, उनके मतानुसार 'वचनिकाओं की भाषा राजस्थानी है और दवावैतों की भाषा खड़ी बोली हिन्दी या उर्दू मिश्रित हिन्दी है।'

वचनिका की व्युत्पत्ति और अर्थ :

'वचनिका' शब्द (जिसे राजस्थानी में 'वचनका' भी कहा गया है) संस्कृत के 'वचन' शब्द से बना है, राजस्थानी में इसका मूल अर्थ है गद्य-रचना, रघुनाथ रूपकार ने इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है। आगे चल कर 'वचनिका' का प्रयोग तुकांत गद्य के अर्थ में होने लगा और सादे गद्य के लिए 'वारता' 'बात', 'वार्तिक' आदि शब्द काम में लाये जाने लगे परन्तु पुराना अर्थ भी साथ-साथ चलता रहा। यथा—

वचनिका

महाराजा रै विवाह रै प्रारम्भ मंगल समय बाल्हारवी कीजै। पिछ सो महाभारथ री वारता येक बार सूरां पूरां मयसाराउसिव विनिया रा बड़ा राज माहे बड़ा हुआ नगारो ज्यां सूरां पूरां चावरां रा कैम वखाणाई नै जमा हुये।

—वचनिका रा० रतनसिंघजी री महेसदासोतरी

अनेक लेखकों ने वचनका और वारता का एक ही अर्थ में प्रयोग किया है। कहीं-कहीं तुकांत गद्य के लिए भी 'बात' 'वार्तिक' 'वारता आदि का प्रयोग हुआ है। यथा—

वारता

औरंगसाह पातसा मासूर अवतार हजरत के तैमूर ज्यूं एक से बिस्तार।
ताप का सिपाही सा प्रताप का निधान मारतंड मानो जिसी जोरावरी जिहान।

१—श्री अगरचन्द नाहटा-दवावैत संज्ञक रचनाओं की परंपरा शीर्षक लेख : शोध पत्रिका वर्ष १२ अंक २ दिसम्बर १९६०।

२—वही।

आपरूप पैगंबर आप का दरियाव, आप का वेस ध्यान आप का कुरान।
सबसे का बीतवार सबसे का भाई मरियम समुद्र आए कुमत के भाई।
पहली में जोगेश्वर पहली में तपसीस पहली में सिवनेम सहली में महीश।
जाके तप तप जागे ईश्वर प्रवीन ताहू पल जांह बल कुण करे हीन।"

—रतन पीर जोगकृत 'राम रूपक'

जैन लेखकों ने वचनिका का प्रयोग साधारण गद्य में लिखित टीका अनुवाद अथवा व्याख्या के अर्थ में किया है। जैन विद्वानों द्वारा टीका-व्याख्यात्मक में लिखित वचनिका साहित्य प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है। अब तक ज्ञात ऐसी सब वचनिकाओं के नामों की सूची 'परिशिष्ट' में दी गई है।

'दवावैत' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ

'दवावैत' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ-दोनों ही-संदिग्ध हैं। दवावैत संज्ञक रचनाओं को प्रकाश में लाने वाले श्री नाहटाजी भी अभी तक 'दवावैत' शब्द के बारे में अपना कोई मत निर्धारित नहीं कर सके हैं। उन्होंने इस विषय में लिखा है कि दवावैत शब्द का अर्थ अभी तक मुझे उर्दू आदि के कोष ग्रंथों में प्राप्त नहीं हुआ।' फिर भी उन्होंने 'दवावैत' को १७वीं शताब्दी में हिन्दी में विकसित फारसी का एक रचना प्रकार माना है। पर उसमें इस मत का कोई आधार स्पष्ट नहीं किया है।[1]

पहले कहा जा चुका है कि अभी तक उपलब्ध सभी 'दवावैत' संज्ञक रचनाओं पर फारसी रचना-शैली का प्रभाव स्पष्ट है—उनमें उर्दू-फारसी के शब्द प्रचुर परिमाण में प्रयुक्त हुए ही हैं साथ ही उनका प्रयोग भी फारसी-उर्दू की एक विशेष रचना-शैली 'बैत' के तर्ज पर हुआ है। ऐसी स्थिति में 'दवावैत' का संबंध 'बैत' से मानना अनुचित नहीं होगा।

'बैत' अरबी (पुल्लिंग) शब्द है, जिसका अर्थ है एक शेर या दो मिसरे (चरण)।[2] 'दवावैत' में भी दो-दो समान तुक वाले गद्य-खण्ड होते हैं।

'दवावैत' संज्ञक जो रचनाएं हमें उपलब्ध हैं उनमें से कोई भी १७वीं शताब्दी के पहले की रचना नहीं है। १७वीं शताब्दी का समय हमारे साहित्य का 'समन्वय-काल' है। इस समय तक फारसी-साहित्य का प्रभाव उर्दू के माध्यम से देशीय भाषाओं तक पहुँच गया था इसमें संदेह नहीं। इसलिए राजस्थानी रचयिताओं ने जिनका शाही दरबार से किसी न किसी प्रकार का निकट सम्बन्ध था, भी फारसी रचना-शैली 'बैत'

१—श्री अगरचन्द नाहटा—दवावैत-संज्ञक रचनाओं की परम्परा शीर्षक लेख—शोध-पत्रिका वर्ष १२ अंक २ दिसम्बर १९६०।

२—मुहम्मद मुस्तफा—उर्दू-हिन्दी शब्द कोश पृ० ४२६।

से प्रभावित होकर रचनाएं की हों तो कोई आश्चर्य नहीं। राजस्थानी में उर्दू-फारसी के कई छन्द जैसे-गजल हाल, महुवास, हुमीकत (हकीकत) आदि रचना प्रकार के रूप में ग्रहण किये गये हैं और फिर 'बैतबाजी' [1]—(जो हमारे यहां की 'अंत्याक्षरी' के समान ही एक साहित्यिक व्यसन है) का तो मध्य काल में व्यापक प्रचार रहा, आज तक उर्दू फारसी जानने वाले समाज में यह लोक प्रिय बनी हुई है। ऐसी स्थिति में राजस्थानी रचनाओं ने यदि साहित्यिक-समन्वय की प्रेरणा अथवा व्यापक लोक प्रियता के आधार पर अपनी भाषा में भी 'बैत' में रचनाएं की हों तो यह असंभव नहीं।

'दवावैत' शब्द संभवतः अरबी के दो शब्दों 'दावा' और 'बैत' के मेल से बना है—दावा बैत 'दवावैत' (राजस्थानी भाषा में लोप और ध्वनि परिवर्तन साधारण सी बात है)।

'बैत' शब्द का स्पष्टीकरण हो चुका है। 'दावा (दवा) शब्द 'बैत' के साथ ऊपर से जोड़ा गया प्रतीत होता है। मूल रचना-शैली 'बैत'। इस धारणा का आधार यह है कि हेमरतन सूरि ने सं० १६४५ में रचित अपने राजस्थानी भाषा के 'गोरा बादल पद्मिनी चौपाई' ग्रंथ में अबैने बहति (बैत) शब्द का प्रयोग-छंद के रूप में किया है। यथा—

छंद बहति

(क) हजार दरद बाकिल। मेर सजिम गुरबार।
भिखुड़ मुहुर कु गम। तिस के बदरद हजार ॥६०४॥
धन यार बादसा बम। रब कुमि तार तार।
दीमार सरोज नेस्ती। मजुम बार यार ॥६०५॥

(ख) यह दूहा ने बीजै बैत माहे लिखियो छै संकेत ॥६११॥
हेमरतन सूरिकृत गोरा बादल पद्मिनी चौपाई (सं० १६४५)

कवि बख्तावर ने भी अपने 'केहर प्रकाश' (रचना काल सं० १८३६) में 'बैत' शब्द का प्रयोग किया है। यथा—

बैत

(ग) असीमद रुस्तम बानी झुहाब्ट कु कहाप।
हनुमन्तो मक मम मफूर बानी भाम॥

—केहर प्रकाश पृष्ठ १४

१— 'बैतबाजी बच्चों का एक हल्की व्यसन जिसमें एक लड़का शेर पढ़ता है और दूसरा लड़का उस शेर के अंतिम अक्षर से आरंभ होने वाला दूसरा शेर पढ़ता है या उसी विषय पर दूसरी उक्ति पढ़ता है।' —वही पृ० ५२६

इसी प्रकार गरीबदास ने भी 'अपनी' गरीबदास की बानी में बैंत में रचना की है।[1]

'बाबा' अरबी शब्द है। अन्यान्य अर्थों के साथ इसका एक अर्थ 'बाब' भी है।[2] इसमें हम बबाबैत' (बाबाबैत) का अर्थ बैत में लिखित रचना ले सकते हैं। इससे अधिक यहां बाबा (जो राजस्थानी में 'बाबा' बना है) शब्द का कोई महत्व प्रतीत नहीं होता।

एक अन्य प्रकार से भी 'दवावैत' शब्द की व्युत्पत्ति की ओर संकेत किया जा सकता है। दवावैत' को एक मिश्रित शब्द दुवा+बैत=दुवावैत>दवावैत–मान कर यह अनुमान किया जा सकता है कि राजस्थानी के लोकप्रिय छंद दुवा (दोहा) के ढंग पर रचित फारसी के बहु प्रचलित रचना प्रकार बैत' को राजस्थानी रचयिताओं ने 'दवावैत' संज्ञा देदी हो तो कोई आश्चर्य नहीं। यहां भी दवा (दुवा) शब्द ऊपर से ही जोड़ा गया लगता है।

फारसी में मुकफ्फा' अर्थात् तुकयुक्त गद्य शैली का व्यापक प्रचार रहा है पर इससे यह नहीं कहा जा सकता कि राजस्थानी की वचनिका और दवावैत शैलियां एकदम फारसी से उद्भूत हैं। दवावैत' शैली पर तो फारसी प्रभाव स्पष्ट है, यद्यपि इस पर भी राजस्थानी का अपना रंग कम नहीं है परन्तु वचनिका शैली तो एकदम भारतीय है। प्राकृत की कथा आख्यायिकाओं की गद्य शैली में इसके बीज खोजे जा सकते हैं।

(घ) तुकान्त गद्य की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

राजस्थानी साहित्य जितना विशाल है उतना ही विषय शैली और रचना वैविध्य से पूर्ण भी। राजस्थानी के साहित्यकारों ने तुकांत गद्य में प्रचुर रचना की है, यह गद्य अधिकतर पद्य के साथ-साथ प्रयुक्त हुआ है। पद्य के साथ बीच बीच में गद्य में रचना करने की प्रणाली राजस्थानी में काफी पुरानी है। आगे चल कर तुकान्त गद्य और पद्य मिश्रित रचनाओं को वचनिका' नाम से अभिहित किया गया है। अस्तु।

पृथ्वीचन्द्र चरित्' अपर नाम 'वाग्विलास (सं० १४७८) राजस्थानी तुकांत गद्य की सर्व प्रथम रचना है। इसके लेखक माणिक्यचन्द्र सूरि हैं। इसमें महाराष्ट्र के पइठाणपुर पाटण के राजा पृथ्वीचन्द्र द्वारा अयोध्या के राजा सोमदेव की कन्या रत्नमंजरी को प्राप्त करने की कथा है। प्र प वर्णनात्मक है। इसकी भाषा तुकांत गद्य का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है। यथा—

१—डा० रामकुमार वर्मा। हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास पृ० २८७
२—मुहम्मद मुस्तफा। उर्दू हिन्दी शब्द कोष।

' तिहां देसी ग्राम मारंभ मभिराम । मनो नगरजिहां न सानीयइ कर । दुर्ग, जिसौ हुई स्वर्ग । धान्य न नीपजइ सामान्य । प्रगट सोना रूपा तणा सागर । जेह देस माहि नदी वहइ लोक सुखइं निर्वहइ । दृष्टिइ देस पुण्य तणउ विशेष बबमऊ प्रदेस । तिणि देसि पट्टणगपुर पाटण वर्त्तइ, जिहां न अन्याय न वर्त्तइ । चौरासी चहुटे कउसी मे करी सराकार पापमि पोडउ प्रकार उत्तार प्रतोली द्वार । आवास भली भांति महाकाय पाई, समुद्र भेहनु भाई । जे जिह कैलास पर्वत शिर भाउ, इस्या सर्वन देवहरा प्रासाद । करइ उल्लास, महीश्वरी चोटीयाल तणा आवास । मानइ मन मणि राज भवन । उपरी सर्वत्र सुवर्णमय दंड ध्वजदण्ड सहलहई अभोर । '

गुर्वावली (सं० १४८२) राजस्थानी तुकांत या पद्यानुकारी गद्य की दूसरी महत्वपूर्ण रचना है । इसके रचयिता भी जिनवर्धन है । यह जैन शासन संघ के तपगच्छ आचार्यों से संबद्ध एक ऐतिहासिक रचना है । इसकी भाषा प्रवाहमयी एवं रोचक है ।

यथा—

"जिम देव माहि इन्द्र जिम ज्योतिष माहि चन्द्र
जिम वृक्ष माहि कल्पद्रुम, जिम रक्त वस्तु माहि विद्रुम
जिम नरेन्द्र माहे राम जिम रूपवंत माहे काम
जिम स्त्री माहे रम्भा जिम वाजित्र माहे भंभा
जिम सती माहि सीता जिम स्त्री माहि गीता
जिम साहसिक माहि विक्रमादित्य, जिम ग्रहगण माहि आदित्य
जिम रत्न माहि चिंतामणि जिम आभरण माहि चूडामणि
जिम पर्वत माहि मेरुशृंग, जिम गजेन्द्र माहि ऐरावण सिन्धु
जिम रस माहि घृत जिम मधुर वस्तु माहि अमृत
तिम सांप्रति कालि सकल गच्छनायक
ज्ञानि विज्ञानि तपि जपि यमि दमि संयमि करी प्रधान
ए श्री तपोगच्छ आचार्य जयवंतउ वर्त्तइ ।" [2]

इसके अतिरिक्त राजस्थानी की और भी कई रचनाओं में तुकांत गद्य के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं जिनके कारण केवल नाम ही नीचे दिये जा रहे हैं—

	रचना	रचयिता	रचनाकाल सं० विक्रमी
१	वस्तुपाल तेजपाल रास	हीरानन्द सूरि	१४८५
२	पृथ्वीचन्द्र चरित्र (?) मुत्तकाणुमाम	अज्ञात	१६वीं शताब्दी

१—श्री अगरचन्द नाहटा के राजस्थानी गद्य काव्य की परम्परा शीर्षक लेख से उद्धृत ।
२—वही

३ कुतबदीन साहिजादे री वात	अज्ञात	१७वीं शताब्दी
४ भीवन चिविग्रनि	समयसुन्दर	?
५ मर्मा मु धार	अज्ञात	१८वीं शताब्दी
६ खींची गंगेव नींबावत रो दो पहरो	अज्ञात	—
७ राजान राउत रो वात वणाव	अज्ञात	
८ सिखर वंशोत्पत्ति उपनाम 'पीढ़ी वार्तिक'	कविया गोपाल	२ वीं शताब्दी
९ कैहर-प्रकाश	कवि बख्तावर	१९११

दवावैत-रचनाएँ

'रघुनाथ रूपक' में दिये गये 'दवावैत' के लक्षण की टीका करते हुए श्री महताबचन्द्र खारैड़ ने लिखा है कि 'दवावैत' कोई छंद नहीं है जिसमें मात्राओं वर्णों अथवा गणों का विचार हो। यह अन्त्यानुप्रास रूप गद्य-भाग है। अन्त्यानुप्रास मध्यानुप्रास और किसी प्रकार का अनुप्रास या यमक लिया हुआ गद्य का प्रकार है।[1]

दवावैत' संज्ञक रचनाएं अधिक उपलब्ध नहीं हुई हैं। सभी उपलब्ध दवावैत रचनाएं १८वीं शती के बाद की हैं। इनकी भाषा और शैली-स्वरूप पर विचार करने से प्रकट होता है कि इनमें उर्दू फारसी के देश भाषा में गढ़े हुए शब्दों का बाहुल्य है—बड़ी मौज की भावावस्था के स्वरूप के भी दर्शन इनमें हो जाते हैं। यथा—

यहां आये हैं यार बैठे दरबार।
ए चांदनी रात कहीं मजलस की बात॥
कहां कौण कौण मुलक कौण कौण राजा देवै।
कौण कौण पातिसाह कौण कौण दीवान देवै॥
—जिनसुख सूरि दवावैत (सं० १७७२)

अब तक प्राप्त दवावैत संज्ञक रचनाएं निम्नलिखित हैं—

रचना	रचयिता	रचनाकाल विक्रमी सं० में
१ नरसिंहदास गौड़ की दवावैत	मा० मतीराम	१८वीं शताब्दी
२ जिनसुखसूरि दवावैत उपनाम मजलस	राम विजय	१७७२
३ दवावैत	कुंवर कुशल	१८००
४ जिनलाभसूरि दवावैत	वस्तपाल (वाचक विनय भक्त)	१८१० और १८२० वैशाख
५—महाराजा अजीतसिंह की दवावैत	द्वारकादास दधवाड़िया	१७५२

१—रघुनाथ रूपक गीतां रो—पृ० २११

६ महाराज सरदारसिंहजी की वचनिका	प्रज्ञात	प्रज्ञात
७ महाराज रतनसिंहजी की वचनिका	दयारहास	१६वीं शताब्दी
८ दुरगादत्त की वचनिका	दुरगादत्त	
९ कुंवर संग्रामसिंह की वचनिका	प्रज्ञात	प्राप्त प्रति सं० १८६७

उपयुक्त सभी वचनिकाओं का संक्षिप्त परिचय श्री अगरचन्द नाहटा ने अपने 'वचनिका संज्ञक रचनाओं की परम्परा' शीर्षक लेख में दिया है।

वचनिका संज्ञक तुकांत गद्य की रचनाएं

वचनिका' राजस्थानी की एक अन्त्यानुप्रास अथवा तुकांत गद्य-शैली है। किन्तु परंपरा में उस काव्य ग्रंथ को 'वचनिका' संज्ञा दी गई है जिसमें तुकांत गद्य के साथ पद्य भी सम्मिलित होता है। ऐसी रचनाओं में पद्य की अपेक्षा गद्य बहुत ही कम रहता है। साहित्य दर्पणकार की मान्यता 'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते'—के अनुसार वचनिकाओं को 'चम्पू' कहा जा सकता है।

राजस्थानी में जैनों ने भी वचनिकाओं की रचना की है और चारणों ने भी।

(क) जैन विचनिकाएं—

यद्यपि जैन रचयिताओं ने 'वचनिका' शब्द को साधारण गद्य के अर्थ में ग्रहण करके अपनी टीकाओं, व्याख्याओं और अनुवाद-ग्रंथों को भी 'वचनिका' संज्ञा दी थी परन्तु १६वीं शती के उत्तरार्द्ध जैनों द्वारा रचित दो ऐसी वचनिकाएं भी मिलती हैं जिनमें तुकांत गद्य का प्रयोग किया गया है। इनके नाम ये हैं—(१) जिन समुद्र सूरि की वचनिका' और (२) शांतिसागर सूरि की वचनिका।[1] नीचे इनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

१ जिनसमुद्र सूरि की वचनिका

इसमें जैसलमेर के खरतरगच्छाचार्य श्री जिन समुद्र सूरि की अपनी राजधानी में ससम्मान आमंत्रित करने वाले राव सातलके यश और कीर्ति का वर्णन है। सं० १५४८ के वैशाख मास में आचार्य श्री जोधपुर पधारे थे। यह वचनिका भी पूर्व वचनिकाओं की ही भांति वर्णन-विशदता से पूर्ण है। उसकी विषय परिधि राव सातल द्वारा श्री जिन सूरि को आमंत्रित करने राव-सातल यश-वर्णन आचार्य का नगर प्रवेश उनका स्वागत और उत्सव वर्णन तक सीमित है।

१—ये दोनों वचनिकाएं राजस्थानी भाग २ पृ० ७७ पर प्रकाशित हो चुकी है।

२ शांतिसागर सूरि की वचनिका

यह खरतर गच्छ की आद्य पक्षीय शाखा के प्रमुख खरतरगच्छाचार्य श्री शांतिसागर सूरि से सम्बद्ध है। ये आचार्य विक्रम की १६वीं शती के मध्य में विद्यमान थे। इस वचनिका के वर्ण्य विषय का आकलन इस प्रकार किया जा सकता है—

१ खरतरगच्छाचार्य श्री शांतिसागर सूरि का वंश-वर्णन।
२ राव जोधा के पुत्र श्री सूर्यमल के वैभव का चित्रण।
३ रिणमल के पुत्र कर्णराय द्वारा आचार्य श्री मेड़ता बुलाया जाना।
४ स्वागत-समारोह तथा उत्सव।
५ जोधपुर में रिणराव ठाकुर द्वारा उनका प्रवेशोत्सव।
६ जोधपुर में आचार्य का चातुर्मास।

उपर्युक्त दोनों जैन वचनिकाएं अत्यानुप्रासयुक्त गद्य में रची गई हैं। इनकी भाषा संस्कृत मे है। दोनों रचनाओं के रचयिताओं के नाम ज्ञात नहीं है।

गद्य के उदाहरण—

१ मोटइ साहस श्री यद बडउ पवाडउ पसीवइ वंदी छोडाणी तउ इग्यारह तणउ पारणउ कीधउ। जिन शासन रिणा सुभ्भर। वाचा प्रतिबल कोट कटक मन सबल। वृहारिया मास अनमास श्रीरम वर्डता रिणमल कुल मंडस श्री जोधराणा मंडण। प्रतापी प्रचण्ड माण मरदन राजाधिराज सादू सर्वराउ।

— जिन समुद्र सूरि की वचनिका

२ इसी परि श्री कर्णकूत मारति गाई हरखित थाई वडी बुद्धि उपाई, बहुया नायक माहि माम्हे ताहराउ थाई राखि मम्हां—सउं सगाई। मकरज वरहि माप रिणमल संतापि मम्ह बहु मेटा करि यापि सकल मायक श्री मारति मापि।

— शान्तिसागर सूरि की वचनिका

(ख) चारणी वचनिकाएं—

अब तक चारणों द्वारा रचित दो ही वचनिकाएं उपलब्ध हुई हैं—

१ शिवदास चारण कृत अचलदास खीची री वचनिका (सं १४८०) और (२) खिड़िया जगा कृत वचनिका राठोड़ रतनसिंघजी री महसदासोत री (सं १७१५)। उपर्युक्त दोनों चारणी वचनिकाएं हमारे निबन्ध का विषय हैं।

१

अचलदास खीची री वचनिका

चारण सिवदास री कही

अचलदास खीची री वचनिका

कृति और कृतिकार

अचलदास खीची री वचनिका चारणी साहित्य के कलात्मक गद्य की प्रथम रचना है। डा० तैसीतोरी ने इसे The great Classical model की संज्ञा दी है। यह एक ऐतिहासिक रचना है, *जिसमें गागरौनगढ़ (कोटा राज्यान्तर्गत) के राजा अचल*दास खीची का कीर्ति-स्तवन किया गया है।

अचलदास खीची विक्रम संवत् १४६७ के आसपास सिंहासनारूढ़ हुआ था। उसका विवाह मेवाड़ के महाराणा मोकल की पुत्री पुष्पा से हुआ था—वचनिका में यही *नाम मिलता है जब कि कर्नल टाड ने उसका नाम लीलाबाई दिया है।*[२]

अचलदास खीची री वारता नामक एक अन्य राजस्थानी रचना में भी मोकल की पुत्री का नाम लीला दिया गया है। कहा जाता है कि विवाह के समय अचलदास ने महाराणा मोकल से यह वचन लिया था कि शत्रुओं द्वारा उसके राज्य पर आक्रमण किये जाने पर महाराणा उसकी सहायता करेंगे।

जब मालवे (मांडू) के सुलतान होशंगशाह गोरी ने गागरोण पर चढ़ाई की तब अचलदास ने अपने पुत्र धीरज को महाराणा के पास सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से भेजा। वचनिका में भी कहा गया है, धीरज रहांराणा मोकलसी पासि गयउ। महाराणा अचलदास की सहायतार्थ गागरौण के लिए प्रस्थान कर ही रहे थे कि चाचा एवं मेरा ने उनका वध कर डाला। मारवाड़ के राव रणमल भी अचलदास की सहायता के लिए आ रहे थे किन्तु मार्ग में ही महाराणा मोकल के वध का समाचार सुन कर सीधे मेवाड़ चले गये।[३]

इस प्रकार अपने हितैषियों की सहायता से वंचित होकर अचलदास ने अकेले ही होशंगशाह गोरी से युद्ध किया। परिणाम स्वरूप उसकी रानियों ने जौहर मनाया और वह अपने साथियों सहित शत्रु संहार करता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ।

इसी प्रसंग को लेकर चारण शिवदास ने अचलदास खीची री वचनिका की रचना की है। वीर अचलदास के क्षत्रियोचित आदर्श एवं बलिदान का प्रतिपादन करने *वाली यह वीर-रसात्मक रचना आगे चल कर अत्यधिक लोकप्रिय हुई और इसकी कई*

१—डा तैसितोरी—रा रतनसिंहजी महेसदासोतरी वचनिका-इन्ट्रोडक्शन पृ १

२—टाड : राजस्थान क्रुक्स संस्करण पृ ३३१ —

३—जगदीशसिंह गहलोत : मारवाड़ का इतिहास पृ ११५ —

एक प्रतियाँ तैयार हुई।[1] इनमें से दो प्रतियाँ बीकानेर के अनूप पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। प्रो० नरोत्तमदासजी स्वामी इनमें से संवत् १६११ की प्रति को प्रामाणिक मान कर इसका सम्पादन कर रहे हैं। हमने भी अपने अध्ययन में इसी के उदाहरण दिये हैं।

शिवदास का जीवन-वृत्त:—

शिवदास के विषय में इतना ही ज्ञात है कि वह गागरोण के राजा अचलदास का आश्रित चारण कवि था। इसके अतिरिक्त इसके जीवन-वृत्त के बारे में कहीं कुछ नहीं मिलता। उसके विषय में यह किंवदन्ती अवश्य प्रचलित है कि युद्ध के समय जब गढ़ की रक्षा कर पाना असम्भव हो गया तब अपने आश्रयदाता के साथ शिवदास भी शत्रु से लड़ कर वीर-गति प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत हुआ, पर उसे युद्ध में सम्मिलित नहीं किया गया। उसे आज्ञा दी गई कि वह राजकुमारों (जिन्हें युद्ध से विरत कर दिया गया था) की सुरक्षा के लिए जीवित रहे एवं प्रस्तुत युद्ध के विषय में काव्य-रचना करके आश्रयदाता की कीर्ति को चिरस्थायी बनावें। अंततः शिवदास को आज्ञा का पालन करना पड़ा।[2] उसने सम्पूर्ण युद्ध को अपनी आँखों से देखा तथा अपने आश्रयदाता को अमर करने के लिए इस 'वचनिका' की रचना की।[3]

वचनिका का रचना काल:—

'वचनिका' में उसकी रचना तिथि या वर्ष के बारे में कोई संकेत नहीं दिया गया है। अतएव उसका रचना काल निश्चित रूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता पर इतना निश्चित है कि इसकी रचना उपर्युक्त युद्ध की घटना के बाद ही कभी हुई है।

डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार यह युद्ध वि० सं० १४९२ के आसपास हुआ था क्योंकि महाराणा मोकल का वध वि० सं० १४९० में हुआ।[4] डा० मोतीलाल मेनारिया ने इस युद्ध का समय वि० सं० १४८२ माना है।[5] परन्तु ये दोनों ही मत समीचीन नहीं जान पड़ते।

१—डा० टैसीटोरी को इसकी कई प्रतियाँ अपने अनुसंधान के समय प्राप्त हुई थीं जिनका उल्लेख उन्होंने जर्नल आव दी एशियाटिक सोसायटी आव बंगाल भाग १२ वर्ष १९१६ और भाग १३ सन् १९१७ में किया है।

२—द्रष्टव्य डा० टैसीटोरी वचनिका रा० रतनसिंघजी री महेसदासोतरी-भूमिका पृ० ४

३—डा० टैसीटोरी—ए डिस्क्रिप्टिव कैटलाग आव बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मैनस्क्रिप्ट्स सैक्शन बार्डिक पोइट्री भाग १ बीकानेर स्टेट पेज ४१।

४—डा० गौ० ही० ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास पहली जिल्द पृ० २५९

५—डा० मोतीलाल मेनारिया—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १००

मुसलमानी फ़ारसी तवारिखों में भी यद्यपि इस आक्रमण, युद्ध तथा गागरोण विजय की कोई निश्चित तारीख नहीं दी गई है परन्तु उनमें वर्णित घटनाक्रम तथा स्थान स्थान पर दिये गये हिजरी सनों के आधार पर गागरोण युद्ध तथा अचलदास खीची की मृत्यु की तारीख और सन् संवत् निश्चित करना कठिन नहीं है। 'तबकात-इ-अकबरी' और 'तवारीख इ-फ़रिश्ता' के अनुसार गागरोण पर होशंगशाह का आक्रमण हि० सन् ८२४ (सं० १४७८ वि०—१४२१ ई०) में हुआ था। गुजरात का सुलतान अहमदशाह २४ रबी-उस्-सानी ८२६ हि० (वैशाख कृष्णा १० १४८० वि० अप्रैल १ १४२३ ई०) को गुजरात वापस लौट गया था। तदनन्तर आवश्यक तैयारी कर होशंगशाह ने गागरोण पर चढ़ाई की।[1] इन फ़ारसी तवारिखों में गागरोण विजय सम्बन्धी कोई विस्तृत वर्णन नहीं लिखा गया है। गागरोण जीत लेने के बाद होशंगशाह ने ग्वालियर पर चढ़ाई की तब दिल्ली का सैयद सुलतान मुबारक शाह ग्वालियर की सहायता करने को रवाना होता हुआ धौलपुर पहुंचा। वहां अन्त में मुबारकशाह और होशंगशाह की भेंट हुई और दोनों के बीच आपसी समझौता होगया। इस चढ़ाई से लौट कर मुबारक शाह रजब ८२७ हि० (अधिक आषाढ़ १४८१ वि०—जून १४२४ ई०) में वापस दिल्ली पहुंचा था।[2]

अतः स्पष्टतया गागरोण पर चढ़ाई और विजय हिजरी सन् ८२४ (ई० सन् १४२१ तदनुसार सं० १४७८ वि०) के उत्तरार्द्ध में हुई होगी। फ़ारसी तवारिखों में इस चढ़ाई और विजय का माह नहीं दिया गया है। अचलदास खीची री वचनिका के अनुसार यह युद्ध महाष्टमी (आश्विन शुक्ल) से लेकर दूसरी अष्टमी (कार्तिक कृ० ८) तक चला था—यथा "इसी परिस्थां सझतां रागतां मरतां मारतां मझा अष्टमी मारव भुव माठ नाठ त्यां दूसरी अस्टमी आइ थे माप्ती हुयी।"

महाष्टमी सोमवार, सितम्बर ११ १४२१ ई० को थी। कार्तिक कृ० ८ सोमवार, सितम्बर २७ १४२१ ई० को पड़ी थी। अतः स्पष्ट है कि अचलदास खीची की पराजय और मृत्यु कार्तिक कृ० ८ १४७८ वि० (सितम्बर २७ १४२१ ई०) को हुई थी।[3]

१—तबकात-इ-अकबरी (अंग्रेजी अनुवाद) १ पृ० २०७-८ ४७५, ब्रिग्स कृत तारीख इ-फ़रिश्ता का अंग्रेजी अनुवाद ४, पृ० २१ २६,२८२ है।

२—तबकात०, १ पृ० ३०५ ६,३ पृ ५०५ ४८०, ब्रिग्स १ पृ० ५१७-५१८, ४ पृ० १८१, याह्या कृत तारीख इ-मुबारकशाही (अंग्रेजी अनुवाद)पृ० २०५ २१०।

३—दीनानाथ खत्री द्वारा संपादित अचलदास खीची री वचनिका—डा० दशरथ शर्मा का ऐतिहासिक परीक्षण पृ० ६

मुहता नैणसी की ख्यात में एतद्विषयक को भी उल्लेख है वे ईसा की १७वीं शताब्दी के हैं इसलिए वे प्रामाणिक नहीं माने जा सकते। अतः उनके आधार पर महाराणा मोकल और अचलदास खीची के मृत्यु संवत् को एक मान कर विचार करना ठीक नहीं। आलोच्य वचनिका के उल्लेख से गागरोण लड़ाई के समय महाराणा मोकल विद्यमान थे। अतः मोकल के मृत्यु संवत् १४८५ (१४२८ ई०) के बाद होने में कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती।

इस प्रकार सिद्ध है कि इस वचनिका की रचना गागरोण युद्ध अर्थात् वि० सं० १४८८ के बाद ही हुई है। इस कृति के रचना-काल के विषय में डा० मोतीलाल मेनारिया का मत निराधार सिद्ध होता है। एक ओर तो मेनारिया जी गागरोण युद्ध की घटना को वि० सं० १४८१ का मानते हैं [1] और दूसरे स्थल पर इस युद्ध की घटना को लेकर लिखी गई इस वचनिका का रचना काल वि० सं० १४७० निर्धारित करते हैं। [2]

आलोच्य ग्रंथ के अतिरिक्त अचलदास के जीवन की इसी युद्ध घटना को लेकर राजस्थानी में एक रचना और रची गई जो 'अचलदास खीची री वारता' के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी एक प्रति राजकीय पुस्तकालय जयपुर [3] में और एक मुनि श्री कांतिसागरजी के संग्रह में सुरक्षित है। बीकानेर में भी इसकी कुछ प्रतियाँ उपलब्ध हैं।

'वात' के आरंभ में अचलदास की दो रानियों के प्रेम की कहानी है और उत्तरार्द्ध में अचलदास और माण्डू के सुल्तान के युद्ध का उल्लेख है जिसका वचनिका में वर्णित युद्ध का पूर्ण साम्य है। 'वात' में शृंगार और वीर-रस प्रधान है जबकि वचनिका में एक ही प्रधान रस है और वह है 'वीर'।

१—डा० मोतीलाल मेनारिया—'राजस्थानी भाषा और साहित्य' पृ० १००

२—डा० मोतीलाल मेनारिया—डिंगल में वीर रस पृ० १८

३—मोतीलाल मेनारिया—राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज भाग १ पृ० १—२

साहित्यिक-विवेचना

कथानिका की कथा

कवि ने कुल देवी—बीस हरि—की वन्दना और 'वेणु पुस्तक धारिणी कासमीर कुंवरि बसन्ति वीतराग गुण दिवसह सरस्वती' का स्मरण करके अपने ग्रन्थ का समारम्भ किया है।

कवि को अपनी प्रतिभा और वर्ण्य-विषय पर गर्व है जिसे उसने "हुम मोह ठाकर पकड़ खोजउ सर सु भाल एक मयण और करइ विवदाद" कह कर व्यक्त किया है। तथापि वह यह मानता है कि वह तभी सफल समझा जायेगा जबकि भावी राजा अपनी सभा सहित अर्थात् काव्य-पारखियों सहित उसकी कृति को चित्त देकर सुनेंगे— आनिन्दत राजा सभा सहित सुनिउ हुई सुणह तउ सुकवि। इसके बाद कथा आरम्भ की गई है।

साहु-पति हीर्डवजाह गोरी का बल-पराक्रम चोटी पर है। उसकी विकट शाहिनी के आगे चारों दिशाओं के शासक नत-सिर हो गये हैं। जब इस सर्वशक्तिमान गोरी-राजा ने अपरवराल बीबी पर चढ़ाई की तब उसके साथ अत्यन्त ६१ मदोन्मत्त गजपति भी साथ ही लिये। गोरी राजा की सेना असंख्य थी उसमें १२ लाख चक्रवर्ती शासक और ६१ लाख सामान्य सैनिक थे। इनके अतिरिक्त मियां कासमाल खान गजनी खान अमरखान इफदत खान सरीखे उत्कृष्ट यवन-वीर और सम्पूर्ण कला-सम्पन्न पराक्रमी हिन्दू नरेश नरसिंह आदि भी अपने दल-बल सहित उसकी सेना में सम्मिलित थे।

गोरी राजा की यह सेना जब चलती थी तब सूर्य धूल से आच्छन्न हो जाता था और पृथ्वी धक-धक करती हुई कंपायमान हो उठती थी। प्रस्थान के समय सेना के अगले भाग को जहाँ पानी मिलता था उसके मध्य भाग को वहीं कीचड़ मिलता था और जब सेना का अन्तिम भाग वहाँ से गुजरता था तो वहाँ धूल उड़ने लगती थी। वस्तुतः वह दूसरा विक्रमादित्य था।

सिंह और हाथी एक ही वन्य-प्रदेश में वास करते हैं फिर उनमें ऐसा क्या अन्तर है कि हाथी तो लाख रुपये में बिकता है पर सिंह को कोई कौड़ी में भी नहीं लेता। क्यों? इसका कारण यही है कि हाथी अपने गले में गल-बन्धन डलवा लेता है—पराधीनता स्वीकार कर लेता है। उसे लोग जहाँ भी खींचते हैं वह वहीं चला जाता है। यदि सिंह भी हाथी की भांति गल-बन्धन धारण करले तो वह भी दस लाख

से विनैमा और फिर भी सस्ता कहा जायगा। पर यह उसकी वीर प्रकृति और संस्कारों के विरुद्ध है।

अचलदास सिंह के समान है। उसने गोरी राजा के कड़वे कथन अर्थात् उसकी अधीनता स्वीकार कर लेने के प्रस्ताव मात्र से कुपित होकर दोनों हाथों में कृपाण लेकर उसके विरुद्ध युद्ध किया। वह नर-सिंह (अचलदास) शत्रु की पकड़ में नहीं आया पराधीन नहीं बनाया जा सका—उसने कायर (हाथी) की भाँति परतन्त्रता (गज-बन्धन) स्वीकार नहीं की।

असीम बल-तेज और गौरव मण्डित पराक्रमी गोरी राजा देश प्रदेश के अनेक विकट वीरों के साथ अचलदास की ओर बढ़ा चला आ रहा था। ऐसा कौन हिन्दू नरेश है जो गोरी के प्रति मन में भी कुपित होने का साहस कर सके। किसका माथा ठनका है? किसमें वेग बढ़ा हुआ है? और किसकी माँ ने दूध पिलाया है जो उसकी तलवार के सामने टिक सके। आज स्थिति बड़ी दयनीय है। अब देश में न तो सोम और सातल जैसे वीर नरेश ही रहे हैं और न ही कान्हड़देव जैसे पराक्रमी राजा ही शेष बचे हैं—हठीला हमीर भी अस्त हो चुका है।

यों तो पहले भी एक से एक बढ़ कर यवन-सुल्तान हो चुके हैं जिन्होंने कुछ ही दिनों में चौरासी दुर्ग जीत लिये थे परन्तु इस गोरी सुल्तान ने तो एक ही दिन में ८४ दुर्ग जीते हैं। ऐसे विकट वीर और दुर्धर्ष योद्धा के सामने कौन टिक सकता है? और किसमें इतना साहस है जो उसकी तलवार के पानी के सामने ठहर सके? गोरी सुल्तान के बल पौरुष की कोई सीमा नहीं—उसने सब दिशाओं को जीत लिया है।

राजा अचलेश्वर (अचलदास) धन्य है उसका साहस श्लाघनीय है। क्योंकि उसने उस विकट आक्रान्ता से लोहा लिया—उसने न तो शत्रु के सम्मुख दीनता प्रदर्शित की और न अन्य कोई ऐसा कार्य ही किया जिससे उसका क्षत्रित्व लज्जित हो। यह अचलदास की ही छाती थी कि उसने उस गोरी राजा से लोहा लिया जिसने दिशाएं रौंदी थी।

दुर्ग भंजक गोरी राजा सदल-बल गागरोण के निकट आ धमका। उसने आस पास चार कोस की सीमा में तम्बू आदि गाड़ कर गागरोण गढ़ को घेर लिया। शत्रुओं द्वारा घेरे की सूचना पाते ही अचलदास युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गया। उसने अपने साथी सामन्तों और सैनिकों को प्राणों पर खेल कर भी गढ़-रक्षा करने का प्रण लेने के लिए प्रेरित करते हुए कहा कि हमारे गढ़ की सुदृढ़ता लंका-गढ़ के समान अविचल है चन्द्रमा भी इसके ऊपर से गुजरता हुआ डरता है। गोरी राजा ने अन्यान्य ऊँचे दुर्ग भले ही जीत लिए हों पर उसे यह दुर्ग ऐसा भारी पड़ेगा। समग्र संसार

का बल धारण करके भी वह अचल पर पार नहीं पा सकेगा— 'साहण साथ मसार देवस पार न पाविसइ' अचल को युद्ध के लिए सन्नद्ध देख कर गोरी ने उसके पास अपना दूत भेजा। दूत ने अचल को समझाते हुए कहा कि गोरी सुल्तान ने गागरोण लेने के लिए ऐसी विकट और विशाल वाहिनी सजाई है जो लंका तक को विजित करने में समर्थ है—

अचलेसर अणपार दल सजियउ खोणव-खण्ड ॥
लंका लेवणहार कोइ गोरी राय नाउरणी ॥

अतएव उसे भी अन्यान्य हिन्दू राजाओं का अनुसरण करते हुए गढ़ छोड़ देना चाहिए—उसे आलम (गोरी) से अड़ कर अपना अंत निकट नहीं लाना चाहिए— 'अचल अड़े आलम अखि अंत आपरउ म आणि।' पर अचल नहीं माना। उसके कुछ सामंतों ने भी उसे समझाया पर वह अपने निश्चय से नहीं डिगा।

अचल ने कहा—सुल्तान चढ़ कर आया है तो हम सामना करेंगे। पहले भी शत्रु चढ़ चढ़ कर आये पर चौहान वंशीय क्षत्रिय अपने गढ़ को छोड़ कर कभी पलायित नहीं हुए— 'गढ़ भी गढ़ पेली करि चालि न गढ चहुआण'—खीची वंशीय अचल भी शत्रु के सम्मुख कभी नहीं झुकेगा— 'नमइ न खीची नीच एक भी गढ़ मेल्ही करी।'"

अपने स्वामी के युद्ध करने के दृढ़ निश्चय को सुन कर उसकी रानियाँ भी कुल लज्जा त्याग कर बाहर आ गईं। मेवाड़ के राणा मोकल की पुत्री पुण्या ने अचल से कहा कि 'हे! स्वामी युद्ध के समय जब आप छप्पे के बास न प्रवेश करेंगे तब मैं भी अपने दोनों मातृ पितृ और श्वसुर-पक्षों को समुज्ज्वल करूँगी। यथा—

सामि तू घर आमि पइसिस मङ्गणाई कड़इ।
हुं उजाणिसिधि आपसा, बेवे पख तिणि तालि ॥

झालाही रानी ने भी ऐसा ही उत्साह दिखाते हुए कहा—'नाथ! जब शत्रुओं के बाणों की वर्षा होगी तब मैं गढ़ की कोट पर खड़ी होकर आपके आगे आ जाऊँगी। यथा—

बहु वेधक बरसेत कोटे झालाही कहइ।
हो आगी होइसि एकइ हुउ कोसीसा कंत ॥

बावन देश की सांखली रानी ने भी वीर-मंत्र को ही उत्कृष्ट बताया 'अमल मुंभ अडिवाह, बोलइ सांखुलि बावनी।

क्षत्राणियों के ऐसे वीर संकल्प सुन कर खीची कुल के क्षत्रिय युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये। रण-क्षेत्र में प्रवेश करने से पूर्व गढ़ के सभी सामंत-सैनिक अचलदास

से भेंट करने आये। सर्व प्रथम अचल ने अपने पुत्र पाल्हणसी से भेंट की। तदुपरांत कल्याणसिंह अडणसिंह करमसी आदि सभी छत्तीसों वंशों के क्षत्रियों से भेंट की।

इसी समय ४० सहस्र नारियों का समूह भी सामने आकर उपस्थित होगया। अबला प्रौढ़ाएं और मोसी पोतसी माताएं आदि सभी अपने अपने देवर जेठ भरतार के पुरुषार्थ को देखने की आकांक्षा से आप्लावित थी। इनमें अचल की माता लखमादे भी उपस्थित थी। पुण्या आदि रानियां अप्सराओं जैसी लग रही थी। गढ़ के प्रासादों के स्वर्ण मंडित कलशों के ऊपर फहराती हुई ध्वजाओं के सौंदर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता।

उधर गौरी-सुलतान अपनी अपार सेना के साथ गढ़ को घेरे खड़ा था। अचल ने भी दुर्ग की रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर लिया था। द्वार-द्वार पर ही नहीं पग-पग पर धनुर्धारी वीर सैनिक और स्थान-स्थान पर गज-सेना नियुक्त की गई थी। इस प्रकार गढ़ लेने वाले आक्रांता गौरी और गढ़-रक्षक अचल दोनों का बल-पराक्रम आश्चर्य जनक और भयावह था।

नगाड़े धड़धड़ाने लगे जिससे पृथ्वी और आकाश दोनों प्रकंपित हो उठे। आलम (गोरी) और अचल दोनों भिड़ गये। युद्ध प्रारम्भ हुआ। धनुषों की प्रत्यंचाएं तनी बाणों की बौछार होने लगी रुधिर बह चला और कबंध नाचने लगे। इस प्रकार [illegible] गौरी और खीची अचलदास ने ऐसा भयंकर युद्ध रचा कि रात और दिन का अंतर मिट गया भूख और प्यास विस्मृत हो गई।

लड़ते-लड़ते, मरते-मारते एक अष्टमी के बीतने पर दूसरी अष्टमी आगई पर युद्ध का अंत न आया। विकट स्थिति देख कर अचल ने अपने साथियों से कहा कि मरण एक बार होता है और यह पर्व बार-बार नहीं आता। अतः कीर्ति की रक्षा होनी ही चाहिए-जौहर जलाओ और शत्रु-दल पर टूट पड़ो। सभी सामंत सैनिकों ने इस बात का समर्थन किया। सामंत नापू गोड ने अचल को सुझाया कि हमें शालिग्राम और पवित्र तुलसी की माला धारण करके गौरी सुल्तान के डेरे पर चढ़ दौड़ना चाहिए इस प्रकार यदि हमने प्राणों की बलि दी तो हमें सूर्य-मण्डल में स्थान मिलेगा-जितने पग शत्रु की ओर बढ़ायेंगे हम उतने ही अश्वमेध यज्ञों के पुण्य के भागी बनेंगे। अचल ने इस प्रस्ताव को सुनते ही मन की बात कह कर स्वीकार कर लिया।

जौहर जलाने का निश्चय होने पर तत्काल ही ४० सहस्र नारियां अग्नि स्नान करने के लिए प्रस्तुत हो गई। उनका अटल विश्वास था कि जैसे कथीर सोने को नहीं जीत सकता उसी प्रकार गौरी-राजा उन्हें नहीं जीत सकेगा—पतिस्वरूपा नारी के सम्मुख तो महारुद्र शिव भी हार मान गये थे गौरी की तो बिसात ही क्या? अचलदास ने भी उन्हें इतिहास में वर्णित जौहर-अग्नि नीति की पुनरावृत्ति करने हेतु प्रेरित किया।

राजकुमार धीरज को मेवाड़ाधिपति राणा मोकल के पास सहायतार्थ भेजा गया था पर उसकी अभी तक कोई सूचना नहीं मिली थी पता नहीं उस पर क्या बीती। अतएव अचल ने निज-कुल रक्षा के लिए अपने दूसरे कुमार पाल्हणसी से युद्ध विरत होकर अन्यत्र किसी सुरक्षित स्थान पर चले जाने को कहा। पर वीर-कुमार ने इसे कायरता का सूचक बता कर अस्वीकार कर दिया। ऐसी स्थिति में कुल-रक्षा के प्रश्न ने सब को चिंतित कर दिया। अचल की माता सम्भारे और उसकी रानी पुण्या ने पाल्हणसी को समझाया कि कुल को स्थिर रखने के लिए बीज को सहेज कर रखना ही पड़ता है। अतः उसका युद्ध से विरत होना कायरता नहीं कहलायेगी। फिर भी पाल्हणसी नहीं माना। इस पर अचल ने पाल्हणसी को संबोधित करके कहा कि "तू कायर है, कापुरुष है, क्योंकि तू केवल मरना चाहता है जीवित रह कर अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करना तुझे अभीष्ट नहीं।' बस यह इतना ही कह पाया था कि उसका गला भर आया। थोड़ा रुक कर फिर करुणा विगलित हो बोला 'अपने हितैषी सामंत-सरदारों का कहा करो और पाल्हणसी तुम युद्ध से विरत हो जाओ।" पाल्हणसी निरुत्तर होगया। अचल ने भाव-विह्वल होकर कुमार को गले से लगा लिया एवं अश्रु पोंछ कर उसे आशीर्वाद देते हुए कहा कि सारी धरा पर अपने प्रताप का प्रसार करो और गोरी-सुल्तान से मेरा बैर चुकाओ, उससे प्रतिशोध लो। अन्ततः विवश होकर पाल्हणसी को अपने पिता की आज्ञा का पालन करना पड़ा और वह अपनी माताओं से गले मिल मिल कर युद्ध से विरत हो गया।

अब जौहर रचा दिया गया, अग्नि प्रज्वलित हो उठी। चन्द्र-वदनी क्षत्रिय वीरांगनाएं "हरि हरि" के उच्चारण के साथ जौहर की ज्वाला में प्रविष्ट होगई।

जौहर जलाने के उपरांत गढ़ के द्वार खोल दिये गये। अचल के साथ उसके सभी क्षत्रिय सामंत-सैनिक तलहटी में उतर आये एवं शत्रु-दल पर टूट पड़े। भयंकर रक्त-पात और नर-संहार हुआ। अचल अनेक शत्रुओं को भूलुण्ठित करता हुआ अंत में स्वयं भी वीर-गति को प्राप्त हुआ—"असुरा असुर अपार मारे अचलेसर पड़ियो।' उसने प्राणों के रहते अपना पद शत्रु को नहीं दीया—"आपण दुरंग न अप्पियो जीवत आदम राह।' इस प्रकार अचल ने संसार में अपना नाम और स्वर्ग में अपनी आत्मा दोनों को अचल बना दिया- संसारि नाम आतम सरगि अचल बेवि कीया अचल।

वस्तु-विवेचन

वचनिका की कथा अत्यन्त संक्षिप्त है। कथा संगठन भी सरल और सहज है, कहीं मोड़ नहीं कहीं घुमाव नहीं, सर्वत्र अविरल गति और स्वाभाविक प्रवाह है जिसका अवसान कथा के अंत में ही हुआ है।

कुल देवी की वन्दना और सरस्वती की स्मरण करके परम्परागत मंगला-चरण एवं परम्परा का निर्वाह किया गया है।

मूल कथा के प्रारंभ से पूर्व कथा के केन्द्रस्थ विचार (सेंटरल) प्राइडिया—जो कि निश्चित ही स्वाधीनता व गौरव एवं वीरत्व का प्रतिपादन करने वाला है—को अत्यंत ही सशक्त शैली में प्रस्तुत कर दिया गया है। यथा—

> नरवर मरइ पराधियत अई अंबर तई बाइ।
> सिंह मनुरवरण के सइह छठ वइ वलिक विकाइ।।

अचल नर-केसरी है वह कायर (हाथी) की भांति पराधीनता (बल-बन्धन) कभी सहन नहीं कर सकता फिर चाहे उसका सभी कुछ क्यों न स्वाहा हो जावे। यही वह मूल धुरी है—काव्य का ध्येय वाक्य है—जिस पर समस्त कथा घूमती है।

गौरी सुल्तान अपार सेना संजोकर अचल पर चढ़ आया है असंख्य नरेश उसके साथ है और असीम उसका बल है। समस्त सु-तम में कोई ऐसा नर-नरेश नहीं जो उसके आगे टिक सके। अतएव वह अचल धन्य है जिसने उस विकट शत्रु से टक्कर ली— धन धन हो राजा अचलेसर। बारह मिमठ जिणि पतिसाह सउं साकउ किमउ।' उस अचल को साधुवाद है कि जिसने सुल्तान के सम्मुख दैन्य प्रदर्शित करके अपने क्षत्रित्व को लज्जित नहीं किया। वास्तव में अचल अचलता ही है। यथा—

> सेरिए पातिसाह आया छांतरि सउ छाडि नहीं कम साकउ नहीं शीस न माकइ पागर लंबित न होई ते राजा अचलेसर अचल भइ अचलेस ही हुई।'

यहां तक कवि ने अचल की जिस वीर-प्रकृति की ओर संकेत किया है आगे उसका वर्णान करके उसकी पूर्ण रूप से पुष्टि की है।

अचल युद्ध के लिए सन्नद्ध है। खीचीवंशीय नरेश कभी नहीं झुक सकता नवइ न खीची नीव। उसकी रानियां भी मर-मिट-कर अपने तीनों पक्षों को उज्ज्वल बनाने को प्रस्तुत है—दुर्ग ऊजालिसि आपणा बेवो पख तिणि तालि। दुर्ग के द्वार बंद करके क्षत्रिय वीर परस्पर आलिंगन करने के उपरान्त शत्रु का सामना करने के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। एक अष्टमी बीत जाने पर दूसरी अष्टमी आवई पर युद्ध समाप्त न हु। अंत में जौहर जलाने का निश्चय किया जाता है। सब मर मिटने को प्रस्तुत हैं। यहीं अचल के सम्मुख अपनी कुल-रक्षा का प्रश्न आता है। फलतः कुमार पाल्हणसी से कुल-रक्षा एवं गौरी से प्रतिशोध लेने के निमित्त युद्ध से विरत होने को कहा जाता है पर वह इन्कार कर देता है। कथा का यह एक अत्यन्त ही मार्मिक स्थल है। कवि कथारम्भ में वीरत्व' को ही अपने ध्येय वाक्य के रूप में प्रतिपादित कर चुका है। ऐसी स्थिति में उसके लिए पाल्हणसी को युद्ध से विरत होता हुआ दिखाना कैसे संभव हो सकता था? पर कवि ने मानवीय संवेदना को आधार बना

कर इस दुष्कर कार्य को भी सफलतापूर्वक संपन्न किया है। विशेषता यह कि इसमें न तो कवि के अभीष्ट को ठेस पहुँची है और न ही पाल्हणसी के चरित्र का ह्रास हुआ है। सब समझा बुझा कर हार गये हैं पर वीर-कुमार पाल्हणसी युद्ध में सम्मिलित होने के अपने निश्चय पर अटल है। परन्तु जब उसे कायर-कापुरुष कह कर उसकी वीर भावना को ललकारा जाता है तब वह सिंह पुत्र विक्षुब्ध हो उठता है पर दूसरे ही क्षण पिता की पलकों पर ठहरे हुए अश्रुकण उससे अपनी मनचाही बात मनवा लेते हैं। यह दृश्य इतना मार्मिक और संवेदनीय है कि इसे पढ़ कर पाठक की पलकें भी भीगी हो जाती हैं। वात्सल्य और प्रेम, कर्तव्य और बलिदान एवं शौर्य और स्नेह का यहाँ एक साथ अद्भुत सम्मिश्रण उपस्थित हुआ है। यहीं कथा अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त होती है। इसके पश्चात् कथा का उतार प्रारंभ हो जाता है और शीघ्र ही रण-क्षेत्र में अचल की मृत्यु होने के साथ ही कथा का अंत हो जाता है।

इस प्रकार कवि अपने अभीष्ट के अनुरूप कथा-क्रम का संयोजन करके वीर भावना के तन्मयकारी प्रभाव की सृष्टि करने में पूर्णरूप से सफल हुआ है।

कथा के दो ही प्रधान विषय हैं—एक युद्ध और दूसरा जौहर इन दोनों मे संतुलन बनाये रखने का सफल प्रयास किया गया है। हाँ, गौरी की सेना का वर्णन कुछ अवश्य बढ़ गया है पर ऐसा वीर-रस के परिपाक और युद्धानुकूल वातावरण के निमित्त ही किया गया है। अनर्गल वर्णनों की ठूँस ठाँस तो इसमें है ही नहीं जो बात है वह कथा से सम्बद्ध है और उसके क्रम को आगे बढ़ाने वाली है—प्रत्येक छंद और घटना अतएव पूर्वापर के क्रम को जोड़ता हुआ कथा के विकास में सहायक बना है। कथानुबंध मे न तो कहीं शिथिलता आई और न ही उसका प्रवाह कहीं अवरुद्ध हुआ है।

स्पष्ट है कि वचनिका की कथा में प्रभावान्विति एकाग्रता क्रमबद्धता सुसंयोजन संतुलन एवं आवश्यक का समावेश और अनर्गल का बहिष्कार आदि सभी गुण समाविष्ट हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कवि ने किसी विशेष साहित्यिक विधा के नियमों में बंध कर वचनिका की रचना नहीं की है। युद्ध की जैसी घटना अपने यथार्थ रूप में घटी थी उसने अपने काव्य में उसे वैसा ही चित्रित कर दिया है। रचना-नैपुण्य के उद्देश्य से उसने अपनी ओर से कोई आयोजन नहीं किया है। अवश्य ही कवि ने शत्रु सेना की संख्या आदि देने में और उसके बल पराक्रम का वर्णन करने में अतिरंजना से काम लिया है पर, जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि ऐसा उसने वीर-रस के प्रतिपादन के लिए ही किया है।

कथा-मूल में मात्र एक युद्ध की घटना होने के कारण कवि ने वर्णनों द्वारा अपनी रचना का कलेवर बढ़ाया है। मुख्य-रूप से शत्रु सेना और जौहर से संबद्ध—दो

ही वर्णन इसमें आये हैं, कवि ने युद्ध वर्णन भी अधिक नहीं किया है सम्बन्ध-सूत्र जोड़ने वाली आवश्यक बात कह कर ही वह आगे बढ़ गया है। जौहर-वर्णन में कवि विशेष रूप से रमा है पर उसमें भी उसने बाह्य साज-सामानों का वर्णन न करके विभिन्न पात्रों की चारित्रिक विशिष्टताओं को प्रकट करने वाले भावों का ही वर्णन किया है। इससे कथा में नवीनता और रोचकता आई है।

चरित्र-चित्रण

वचनिका में जीवन की सरल और स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है। इसके पात्र प्रायः एक ही कोटि के हैं। प्रधान-पात्रों का कथा-क्रम के निमित्त नामोल्लेख मात्र हुआ है। शेष सभी क्षत्रिय पात्र समान संस्कारों और आदर्शों से अन्वित हैं। वर्ण्य-विषय के युद्ध की घटना तक ही सीमित होने के कारण प्रायः सभी पात्रों का चरित्र जितना व्यक्त हुआ है उतना विकसित नहीं हो पाया है। यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि वचनिका युद्ध-प्रधान रचना है—इसके सभी पात्र वीर प्रकृति के हैं। वीर के चरित्र में अंतर्द्वन्द्व विशेषकर युद्ध के अवसर पर, जबकि मान की बाजी लगी हो—के लिए कोई स्थान नहीं होता वह तो कर्म-भावना से प्रेरित होकर निज धर्म और कुल-गौरव की रक्षार्थ सदैव मरने-मारने को प्रस्तुत रहता है। परिणाम की चिन्ता या आतंक का भय उसे नहीं होता। फलतः वह द्वन्द्व की स्थिति में भी नहीं रहता। वचनिका की पात्र-सृष्टि में हम यही सब कुछ देखते हैं फिर भी शिवदास ने मानव-मनोवृत्ति को पहचानने में समर्थ अपनी सूक्ष्म-बुद्धि से अचलदास और कुमार पाल्हणसी को द्वन्द्व की स्थिति में लाकर उपस्थित किया है वह निश्चित ही उसे उत्कृष्ट कोटि का कवि सिद्ध करने वाली है।

वचनिका में पात्र कई एक हैं पर उनमें अचल और कुमार पाल्हणसी ही दो ऐसे चरित्र हैं जिन पर पाठक का ध्यान केन्द्रित होता है। शेष पात्रों में अपनी कोई विशिष्टता नहीं है वे अचल के चरित्रोत्कर्ष में ही सहायक हुए हैं। अस्तु।

अचलदास खीची

वचनिका का नायक स्पष्टतः अचलदास है। सम्पूर्ण कथा-क्रम का केन्द्र वही है और सारी बातें उसी को लेकर आगे बढ़ी हैं। अचल धीरोदात्त प्रकृति का वीर क्षत्रिय नरेश है। वह कर्म से वीर भावना से कुशल एवं विचारों से स्वतंत्र और स्वाभिमानी है।

ऐसे समय में जबकि भारत भूमि विदेशी आक्रांताओं से पद-दलित हो रही है, पराक्रमी हिन्दू नरेशों के गौरव-तेज का सूर्य अस्त हो चुका है एवं तथा कथित हिन्दू नरेश पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष की भावनाओं की तुष्टि और अपने क्षुद्र स्वार्थों की

सिद्धि के लिए विरोधियों के पिछलग्गू बन देश को रसातल की ओर घसीटने में लगे हैं अचलदास एकमात्र ऐसा वीर स्वाभिमानी नरेश है जो निज धर्म और स्वाधीनता की रक्षार्थ अपार शक्ति संपन्न शत्रु से जूझने को प्रस्तुत है।

कवि ने अचल के साहस-गुण को व्यक्त करने के लिए गोरी के बल-तेज का नितान्त ही अतिरंजित वर्णन किया है।

गोरी वामन की भाँति असंख्य सेना लेकर अचल पर चढ़ आया है, पर वह भयभीत नहीं है। साहस और धैर्य का धनी अचल शत्रु को आत्म-समर्पण करना तो दूर रहा उसके सम्मुख दीनता तक प्रदर्शित नहीं करता। यथा—

तेरिए पतिसाह आमा सांतरि छत पाडि नही चढ़ आंडइ नही दीन न भाखइ पागर लंकित न होइ ते राजा अचलेसर सारिखा अवर नर अचलेस ही हाई।

निश्चय ही अचल धन्य है कि उसने गोरी जैसे बल-शक्तिमान शत्रु से लोहा लिया धन्य-धन्य हो राजा अचलेसर बारह निमड जिणि पातिसाह सउं आंकुड लियउं।

अचल के युद्ध-निश्चय की सूचना पाकर गोरी उसके पास अपना दूत भेजता है। दूत उसे समझाता है कि गोरी सुल्तान ने वामन की भाँति अपार सेना सजाई है— दल साजियउ वामण तणउ—अतएव उसे उससे (गोरी से) लड़ कर अपने वंश को निमंत्रण नहीं देना चाहिए— अचल अछै आगम सरिस अंत आपरइ न आणि' और अन्यान्य हिन्दू राजाओं की भाँति उसकी अधीनता स्वीकार कर लेनी चाहिए। पर अचल अपने निश्चय से नहीं डिगता है। दूत को उसका उत्तर है कि खीची नरेश कभी किसी के आगे नहीं झुकता— नमई न खीची नीच। शत्रु को अपना दुर्ग सौंपने का विचार ही उसके लिए मृत्यु तुल्य है—हियउ न होइ अरप्पण दुग्गह गढ़ मेलियउ। उसे पूर्ण विश्वास है कि गोरी राजा उसे कभी भी नहीं जीत सकेगा हर गौरी राय नयउं अरइ जिहि जाति न जाति'—वह अचल-वत उसके सम्मुख सुदृढ़ स्थित होगा। यथा—

गाहणि आव न धार वैसण धार न आमिखइ।
पुहियइ गोरी राय-कइ मईमल सवल अपार॥

अपने इसी विश्वास के बल पर वह एक माह तक वीरता-पूर्वक गोरी के हमले से दुर्ग की रक्षा करता है। इसके बाद अपने पक्ष की दुर्बलता स्पष्ट होजाने पर भी वह शत्रु के सम्मुख नत-मस्तक होने की बात नहीं सोचता अपितु मरण को महत्तम पर्व के रूप में स्वीकार करके—मरण तब ऐक वार नाउं इसउ अब बार-बार—क्षत्रिय वीरांगनाओं को जौहर जलाने के लिए प्रेरित करता है। यथा—

'अवइ तम्हइं मउं करउ ब्याउ जोगइ जौमाइत के वरि जउहर हुआ.. .. तिहुं जउहरां जिका वात ऊगी हुयी हुवइ रमा तम्हइ पूरी करि दिखालउ पूरी हुयी हुइ रमा पमरैणि पाहुणि सनीमड।

इस प्रकार अचल के चरित्र में सभी वीरोचित गुणों का समावेश हुआ है। उसका निश्चय विश्वास और आदर्श सभी उसके नाम की ही भांति अचल है।

यहां तक अचल के व्यक्तित्व के कठोर- पक्ष का ही उद्घाटन हुआ है। आगे चल कर उसका कुल रक्षा के विचार से चिंतित और पुत्र प्रेम से विह्वल जो रूप सामने आता है उसे देख कर तो पाठक का मन अभिभूत हो जाता है। निश्चित ही अचल उस पार्वतीय प्रस्तर-खण्ड के समान है जो ऊपर से कठोर और रूक्ष दिखाई देने पर भी अपने अन्दर निर्मल जल की स्निग्ध धारा छिपाये रखता है।

अचल अगर कुल-रक्षा के प्रश्न से चिंतित है—हुवे तउ यउ चिंता वसतु—जे
तभी संतोष हो सकता है जबकि उसके दोनों कुमार वीरम और पाल्हणसी सुरक्षित बच जायें, इसी में उसका हित है अन्यथा उसके कुल का नाश निश्चित है—

उहां वीरौ ऊबरै रहा पाल्हणसो बीसरै तो सब बात सवरी नहीं तो राजा
अब समरणी गई हमरी।

अचल की इस मनोवृत्ति को देख कर संशय हो सकता है कि वह निज कुल-रक्षा के मिस अपने पुत्रों की प्राण-रक्षा करने की हीन भावना से ग्रस्त है। संशय एक दम निराधार भी नहीं लगता क्योंकि जब सभी क्षत्रिय नर-नारियां मर-मिटने को प्रस्तुत है तभी अचल अपने पुत्रों की प्राण रक्षा की बात करता है। परन्तु तथ्य यह न होकर कुछ और ही है।

पाल्हणसी अपने पिता की आज्ञा की अवहेलना कर जब युद्ध से विरत होने के लिए राजी नहीं होता तब अचल उसे फटकारता हुआ कहता है कि वह (पाल्हणसी) कायर-कापुरुष है क्योंकि वह मरने के मिस अपने भावी गुरु उत्तरदायित्व से बचना चाहता है। यथा—

यउ तउ कायर कापुरिस नू हर तउ यउ ही बडउ मिस... .. —मम बहु न
बामर : बार की प्रति मे यह भाव अधिक स्पष्ट है यथा—भी तो पै कायर भर का
पुत्रतः यह बडी पायेका को मतग्रह भार वाले नहीं यहै पै मरवाही का मीसा'

अचल के इस कथन से उपर्युक्त संशय पूर्णतः निर्मूल सिद्ध हो जाता है। आगे उसने आंखों में पानी भर कर पाल्हणसी को अंक में भरते हुए जो वचन कहे हैं वे भी उसके गौरवशाली चरित्र की उच्चाशयता को उभार कर प्रकट कर देते हैं। यथा—

बगडी की भाई सबल ही अधिक प्रतपिस्यइ मर जइ लीजपइ हमरउ बदर
मुरिताए मोटी राजा सई कीस्यउ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कुमार पाल्हणसी का युद्ध से अलग रखने के पीछे अचलदास की अपने पुत्र को जीवित रखने जैसी कोई हीन भावना नहीं है अपितु अपनी वंश परंपरा को स्थायी रखने के साथ ही अपने कुल-गौरव की पुनर्प्रतिष्ठा करने का भाव

ही है। मलखान ने पितृ-प्रेम के वशीभूत होकर पाल्हणसी को युद्ध से प्रवृत्त नहीं किया है अपितु उसे एक महान उत्तरदायित्व के निर्वाहार्थ प्राण देने के लिए जीवित रखा है।

यह शिवदास की सधी हुई लेखनी का ही कार्य था कि उसने मलखान को इस दुर्द्धर्ष रण में डाल कर भी उसके चरित्र की निर्मलता और उच्चाशयता को कोई आँच नहीं आने दी। वीरता और प्रेम का जैसा अनूठा संयोग मलखान के चरित्र में हुआ है वैसा अन्यत्र मिलना दूभर ही है।

अंत में मलखान जौहर जमा कर अपने वीर साथियों के साथ शत्रु संहार करता हुआ वीर गति को प्राप्त होता है—षग्गा मगुर षग्ग घाँट घाई अपपंमर घट्टमो।

उसने प्राणों के रहते अपना दुर्ग शत्रु को नहीं दिया—"प्राणह दुर्रंय न अप्पियौ जीवत जाहन—राइ। इस प्रकार कवि के शब्दों में मलखान ने संसार में अपना नाम और स्वर्ग में अपनी आत्मा को अचल (अमर) बना दिया— संसारि सोभ आतम सरगि अचल बैठि जीवा मलख।

पाल्हणसी—

चरित्र चित्रण की दृष्टि से कुमार पाल्हणसी अचलसिंह का एक महत्वपूर्ण पात्र है। जिस अंतर्द्वन्द्व से होकर उसे गुजरना पड़ा है वह किसी भी व्यक्ति के चरित्र की कसौटी कहा जा सकता है। शत्रु सर पर है। स्व—पक्ष की शक्ति क्षीण देखकर निजधर्म की रक्षार्थ दुर्ग का चप्पा-चप्पा मर मिटने को प्रस्तुत है पर पाल्हणसी को कुलरक्षा का वास्ता देकर युद्ध से विरत हो जाने के लिए विवश किया जाता है। यहाँ माता-पिता की आज्ञा और अन्यान्य हितैषी-जनों की सम्मति है। एक ओर पुत्र-धर्म है तो दूसरी ओर वीर-धर्म। पाल्हणसी किसका वरण करे? पुत्र धर्म का निर्वाह करने पर अपयश और कलंक का भागी बनने की पूरी आशंका है और वीर-धर्म पर अटल रहने से पितादि की अंतिम आज्ञा का उल्लंघन होता है। कैसी दुविधा है? कैसा धर्म-संकट है? पर चूंकि पाल्हणसी वीर संतान है अतः वीर-धर्म का निर्वाह करना ही उसे अभीष्ट है। इसीलिए सबके समझाने बुझाने पर भी वह युद्ध से विरत होने की बात मानने को प्रस्तुत नहीं। पितृ-आज्ञा की अवहेलना करके भी प्राण देकर भी-वह वीर बना रहना चाहता है। पर जब उसके 'वीरत्व' पर ही शंका करके उसे अपने उत्तरदायित्व से जान छुड़ा कर भागने वाला कायर कापुरुष कह दिया जाता है तब तो वह वीर-युवक तिलमिला उठता है—तिलमिला-जाता है। प्राणों पर खेलने वाले अपने वीर पिता की लाशों पर लरजते हुए आँसुओं को देख कर तो उसकी यश-संपदा आदि की सभी कामनाएं काफूर हो जाती हैं और जब मलखान आँसू पोंछता हुआ उसे अंक में भर कर—आँसू पूंछि अंकमाल तिलक-संपूर्ण धरा पर अपने प्रताप का प्रसार करते अपने पितृ

अनन्वय—   १ अडहड अडहड अहुवा

रूपक—   १ सर पु छिन ससली
२ ससि असणो सिव सिर करै पैसे पावक माहि
३ पवि-पवि पडमि मंडोमि हस्ती को मद मदा

उत्प्रेक्षा—
१ फूल बहुवा बीसे केसम ऊगा फिरि प्राचीन

छंद

वचनिका एक छोटी सी रचना है जिसमें गद्य और पद्य कुल मिलाकर ८४ अवतरण हैं गद्य खण्ड केवल ११ हैं शेष दूहा ६१ सोरठा ५ गाहा २ गाथा १ रसावला १ कुंडलिया १ और २ कवित्त ७३ पद्यावतरण हैं।

वचनिका में अंतमेल दूहे का ही अधिक प्रयोग हुआ है। यथा—

घणा मधुर घण बाई घाडे मधमेघर घड़को।
घायण दरंप न धप्पियो बीसल आदम-राह॥

भाषा-शैली

कवि शिवदास की रचना का एकमात्र लक्ष्य अपने आश्रयदाता अचल के आदर्श और वीर-चरित्र का उद्घाटन करके उसका कीर्ति-स्तवन करना है। इसके लिए उसने तत्कालीन भारतीय समाज की पतितावस्था के चित्रण को अपना आधार बनाया है।

मध्य-युगीन भारत का इतिहास हिन्दू-जाति के अध:पतन का इतिहास है। यह वह समय था जब हमारी प्राचीन संस्कृति लुप्त हो चली थी राजन्य-वर्ग भोग-विलास में लिप्त था—पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष ने उसकी शक्ति का क्षय कर दिया था—सामंत वर्ग अपने संकुचित स्वार्थों की सिद्धि के लिए विदेशियों की चाटुकारी में लगा हुआ था। और मध्यम एवं निम्नवर्ग के सामने अपने भरण-पोषण की समस्या ऐसा विकट रूप धारण कर चुकी थी कि देश प्रेम और राष्ट्रीय एकता की भावना से उनका दूर का भी कोई सम्बन्ध नहीं रहा था। देश की ऐसी हीन और पतितावस्था में यदि कोई नरेश निज-धर्म स्वाभिमान और स्वाधीनता की रक्षा करता हुआ पाया जाये तो वह निश्चित ही अचल कीर्ति का अधिकारी है। देश की तत्कालीन पतितावस्था की ओर संकेत करके कवि शिवदास ने अचल को एक ऐसे ही वीर और आदर्श क्षत्रिय पुरुष के रूप में चित्रित किया है।

प्रायः सभी क्षत्रिय-नरेश कुल-क्रम निर्वीर्य होकर अपने उच्चादर्शों से गिर गये हैं। सामंतों, धर्म-पंडितों आदि का साहस और तेज भी जाता रहा है। वे अपने कर्त्तव्य

में तो वीर होते हैं पर उनमें इतना सामर्थ्य शेष नहीं कि वे यवन-शत्रुओं का सामना कर सकें। यथा—

(क) उत्तर दखिन देस पूरब पच्छिम तणा ।
  बाधिया सउं चालिम कटक नमिया सकल नरेस ॥

(ख) हुरमंप हिंदूकार घर घर प्रति हूमउ धणउ ।
  मिलियइ मंडपराइ-कइ कुण उपरइ संधार ॥

(ग) हुई पतिसाह तणइ पामाणइ पारंम सुणी ।
  हलहलिया हैकारणाइ नरपति घणे घणेह ॥

वीर-प्रसवा भारत-भूमि में कोई ऐसा वीर शेष नहीं रहा है जो शत्रु से लोहा लेने की बात तो दूर उसके प्रति कुपित होने तक का साहस कर सके। सोम सातम कान्हड़देव और हठीले हमीर जैसे वीर और पराक्रमी हिन्दू नरेशों का युग तो बीत गया। है। कायर बच रहे हैं। यथा—

इसउ हिन्दू राजा उपजेति कउण धार जिकई मनि पतिसाह की रीस धमी करएण का माथा-तई लिमी कउण हुद दई वडउ कउण की माई जिणाणी जु सामउ पहउ भणी पाणी, भाज तउ सोम सातम कान्हड़दे नहीं जिमउ कुपरितउ गहिलवउ नहीं सीहुउरि रणमु नहीं हठ को धउ हमीर भाखमउ।'

ऐसी स्थिति में धन्य है वह अचलदास जिसने चारों दिशाओं को जीतने में समर्थ गोरी-सुल्तान तक के आगे सिर नहीं झुकाया—

अब तउ पातसाह उत्तर दखिण पूरब पच्छिम—च्यारि खंडतणा इसा पुरखा रव नहीं पारावार धन धन हो राजा अचलेसर। भारत जिणउ जिणि पतिसाह सउं बोहउ लियउ।

स्पष्ट है कि कवि ने अपने चरित-नायक के महत्व का प्रतिपादन एक सुदृढ़ भित्ति पर किया है। पहले उसे एक ऊंचाई पर लाकर प्रतिष्ठित करके उसे पाठक की श्रद्धा का अधिकारी बनाया है तदुपरान्त उसे साधुवाद दिया है। इस प्रकार कवि ने पाठक को उसी मनोभूमि पर अवस्थित कर दिया है जिस पर रह कर उसने काव्यरचना की है। उसकी शैली का यह कौशल सराहनीय है। अस्तु।

वचनिका गद्य-पद्यमय शैली में रचित वीर रसात्मक काव्य है। शिवदास गद्य और पद्य दोनों शैलियों का सफल प्रणेता है।

वचनिका की गणना राजस्थानी गद्य की प्रथम प्रौढ़ गद्य रचनाओं में की गई है। यद्यपि इसमें पद्य की तुलना में गद्य बहुत कम प्रयुक्त हुआ है फिर भी वह इतना प्रौढ़ पुष्ट और अर्थ-गुणसंपन्न है कि उसके आधार पर राजस्थानी भाषा अपने परिवार

की अन्यान्य भाषाओं के प्रारंभिक गद्य-साहित्य के क्षेत्र में निश्चित ही शीर्ष स्थान की अधिकारी बन सकती है।

शिवदास की गद्य शैली में एक सहज और सरल प्रवाह है। जैसे सरिता के स्वाभाविक जल प्रवाह के साथ रजकण आगे बढ़ते चलते हैं और उसकी गति को प्रगट करते हैं उसी प्रकार वाक्य का प्रत्येक शब्द कवि की भाव-धारा के अनुसार अभीष्ट अर्थ को व्यक्त करता हुआ वर्ण्य विषय को स्पष्ट और अग्रसर करता हुआ चलता है। कवि की भाव-धारा कहीं भी शब्दों के बोझ से दब कर अवरुद्ध नहीं हुई है। भाव जितने सहज और स्वाभाविक हैं उतनी ही उनकी अभिव्यंजना सरल और स्पष्ट है। यथा—

तेणी पातिसाह आया छोडरि कुण सहइ? कुसइ सहिजइ? कुण की कुरती? कुस की भ्राती? कुण की माइ बियाणी जु धामउ सहइ अली पाली?

तेणि पातिसाहु आयौ छोडरि सत छाडि नहीं बल छांडइ नहीं वीरा न मारू पाधार न संचित होई तै राजा अचलेसर सरिखा अचल नइ अचलेस ही हाई

यहाँ कवि का अभीष्ट अचल के साहस और तेज की व्यंजना करना है। इसके लिए उसने अचल के भौतिक सामर्थ्य और शक्ति का वर्णन नहीं किया है अपितु प्रतिपक्ष के बल और पराक्रम का निदर्शन मात्र करके अपने अभीष्ट की सिद्धि करली है। अभीष्ट भाव जैसे प्रश्न-चिन्हों की सीमा की अवहेलना करता हुआ एक दम अंतिम वाक्य तक आकर आंशिक प्रभाव की सृष्टि करके नितांत ही स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त होगया है।

शिवदास की गद्य-शैली की एक अन्य और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसका प्रत्येक वाक्यावतरण चाहे वह बड़ा हो या छोटा अपने आप में एक पूर्ण भाव या विचार लिए हुए है। यथा—

तिरी कमीर न चीपइ कमाक हइ एतउ न चीपइ हुम-हुइ सिव सक्ती सम कुमती सिव हारमउ चीत्मउ सकति ऐ वडी मडाई हइ कमरा नति जु अम्हे मुआ की पैल मरां माइ-बाप बीसरां, तीन पख ऊजरां।

यहां कवि ने गिने-चुने शब्दों में क्षत्रिय नारी की वीर भावना और उदात्त चरित्र की संक्षिप्त किन्तु अपने आप में पूर्ण और मार्मिक झांकी प्रस्तुत करदी है। 'मुआ की पैल मरां'—मृत पति के साथ सती होने से तात्पर्य है। इस छोटे से वाक्य में कवि ने सारी बात के बीज भाव को व्यक्त कर दिया है। आगे के दो वाक्य उसी की पुष्टि करने हेतु प्रयुक्त हुए हैं। प्रथम वाक्य के 'कमीर' और 'कमाक' शब्द क्रमशः यवन संस्कृति और आर्य संस्कृति के प्रतीक बन कर आये हैं।

शिवदास ने अधिकतर गद्य रचना में वचनिका-शैली (तुकांत गद्य-शैली) का ही प्रयोग किया है पर कहीं-कहीं उसने साधारण गद्य को भी अपनाया है। यथा

'... ...सातरि पावलइ दसि पाखी पाछिमाइ दसि पादम बहु आइ मैहु उकठी बाद दुसरइ विकमाइति ।'

जहां कवि ने तुकांत गद्य-शैली ग्रहण की है वहां भी उसने कृत्रिमता नहीं आने दी है । तुक निर्वाह के लिए न तो उसने शब्दों को तोड़ मरोड़ कर मठ-बाट बिठाने का प्रयास किया है और न ही वाक्य रचना के साधारण नियम को ही भंग किया है । यथा—

इसा-ऐक तर पातसाह रा कटक-बंध मचमेस्वर ऊपर छूट्या बाट-का सड—रंगरा चू या, औड़ का पाखी तूग परबतो सिरि पंच मापा छुमट कट मापा, सूर सूभट नहीं भैइ मापा ''

यहां न वाक्य-विन्यास अस्त-व्यस्त हुआ है और न भाषा प्रवाह अवरुद्ध । 'छूट्या' 'चूटा' 'तूटा' 'मापा' 'मापा' एवं मापा शब्द तुक निर्वाह की दृष्टि से जितने स्वाभाविक हैं, उतने ही वर्ण्य वस्तु के अनुकूल भी ।

गद्य लिखने में विद्यापति जितना पटु है उतना ही पद्य रचना में समर्थ भी । वह एक नैसर्गिक कवि है । भाव संकुल हृदय और सहज सुन्दर वाणी के योग से उसकी कविता बनी है । अलंकार चमत्कार और वक्र व्यंजना कौशल से वह रीता है । दिल की बात खुल कर खुले शब्दों में कह देना उसका गुण है । हार्दिक अनुभूति की सहज और अकृत्रिम अभिव्यक्ति को यदि कविता कहा जाय तो विद्यापति निश्चित ही एक सफल कवि है । उसकी अनुभूति जितनी तरल है उतनी ही उसकी अभिव्यक्ति सरल है । यथा—

एकइ चक्खि बसंतरा एकर भंतर काइ ।
सीह कवरी मह लहइ एहवर नखिस बिकाइ ॥
एहवर गलइ पलाखिबउ अहं बंधइ ठइं आइ ।
सीह असरवण पै लहइ तउ बहु नखिस बिकाइ ॥

इन पंक्तियों में कवि का अभीष्ट भाव-स्वाधीनता की गरिमा परिपक्व होकर अभिव्यक्त हुआ है । एक एक शब्द भाव लहरि से बंधा है । प्रथम चरण में एक प्रश्न उठा कर जिज्ञासा उत्पन्न की गई है जो द्वितीय चरण में आकर कुतूहल का रूप धारण कर लेती है और अंतिम के दो चरणों में नितांत ही मार्मिक ढंग से उसका समाधान कर दिया गया है । स्पष्ट है कि कवि ने भाव पद्य रचना के वह रूप में बेढंगी नहीं बनाई है, वह सर्वत्र एक भाव या विचार को लेकर अग्रसर हुआ है ।

कवि ने प्रायः वर्णनात्मक शैली, उसमें भी प्रत्यक्ष कथन पद्धति को अपनाया है । उसने शब्दों को कहीं भी काट-छांट कर निरर्थक रचना नैपुण्य प्रदर्शित करने का प्रयास नहीं किया है यथा—

(क) बारह सहस्स सुर बड पाखर
मदिमत्ता चवरासी मैंगल
गाहण सहस तीस भर गैरह
आलमसाह भडी घड फेरह

(ख) आलम अवनेसरि अक्खा पही बेऊ पक्खक
पिडि पैठा हींदू पखइ पैठा सहस तुरक्क

जौहर की ज्वाला में प्रदीप्त राजपूत वीरांगनाओं के तेज भरे गौरव की भावना से प्रेरित मरणातुर रतनराव का खड्गधारी रूप और अन्यान्य क्षत्रिय योद्धाओं के त्याग और बलिदान ने कवि के अन्तर्मन में एक आवेग की सृष्टि करदी है उसी आवेग में बह कर उसने रचना की है। यही कारण है कि उसकी कविता स्वयंमेव स्फुरित हुई है उसके लिए उसे कोई विशेष आयोजन नहीं करना पड़ा है। वस्तुतः उसने कविता की नहीं है कही है। यथा—

पारहणसी प्रुथि हि खमउ भनि समइ-न्या सरमि ।
तिण बैसा हीया भरि राइ पइ रोमण भमि ॥

यहां कवि ने जौहर की ज्वाला में भस्म होने को प्रस्तुत पत्नियों की कुमार पारहणसी से अंतिम भेंट का कितना सजीव और मार्मिक चित्र खींचा है। अलंकार चमत्कार से दूर शब्दों की कतर ब्योंत से परे और वक्र व्यंजना से रहित अन्तर्वेदना की अनुभूति की यह अभिव्यक्ति इतनी सरस और प्रभावशाली है कि पढ़ते पढ़ते पाठक का मन द्रवित हो उठता है। सिक्षा देने (प्रभावित करने और आनन्दित करने टू इंस्ट्रक्ट टू मूव टू डिलाइट) को ही कविता का प्रयोजन कहा गया है। उपर्युक्त दोहे में इन गुणों के साथ ही उद्वेलित करने का भी गुण है। संभवतः इसी से प्रभावित होकर पाश्चात्य साहित्य मनीषी डा० टैसीटोरी ने आलोच्य कृति को प्रौढ़ साहित्य की महान कृति (दी ग्रेट क्लासिकल मोडल) कहा है।[1]

वचनिका की भाषा पुरानी पश्चिमी राजस्थानी है जिसमें यत्र-तत्र पूर्व रूप भी दिखाई पड़ते हैं। कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। वह शब्दों को गढ़ने संवारने वाला कारीगर कवि नहीं है पर उसे प्रसङ्गोपयुक्त और भावानुकूल शब्दों की सही पहिचान है। इसी पहिचान के कारण उसकी रचना महती लोकप्रियता की भागी बन सकी है। उसने शब्दों को गढ़ कर नहीं अपितु परख कर उनका उपयोग अपनी रचना में किया है। यथा—

तद पतिसाह हलेह पमाणउ पारंभ सुणी ।
<u>कुलहग्नि</u>बाईकालबर अवपति <u>भमे गमेह</u> ॥

१—डा० टैसीटोरी : वचनिका राठोड़ रतनसिंह जी री महेसदासोतरी इंट्रोडक्शन पृ० ९

यहां शब्द जितने वाचक हैं, उतने ही व्यंजनापूर्ण भी। रेखांकित शब्दों से जहां योद्धाओं की प्रस्थान गति ध्वनित हुई है वहीं उनकी मस्ती और उन्मत्त उत्साह के भाव भी व्यक्त हुआये हैं।

वीर रसात्मक काव्य रचना करके भी कवि ने संयुक्ताक्षर शैली का प्रयोग नहीं किया है। 'ट' वर्ग 'ड' वर्ग आदि ओजपूर्ण शब्द तो इसमें ढूंढने पर ही कहीं मिलेंगे। साधारण शब्दावली का प्रयोग करके भी कवि ने उसमें वीर रसानुकूल ओज गुण का संचार कर दिया है। यथा—

हहकंप हिन्दुवार धर धर प्रति हुवर धरा।
मिलिमिड़ मंडप राड़ कर कुण उपरड संचार॥

इस दोहे का प्रत्येक शब्द वीरों के बल पराक्रम को व्यक्त करने वाला है। यहाँ न तो कोई शब्द फालतू है और न ही निरर्थक।

कहीं कहीं तो शिवदास ने दो-चार शब्दों में ही पूरा भाव सम्प्रेषण व्यक्त कर दिया है। यथा—

नवड़ न वीधी नींव'

दोहे के ग्यारह मात्रा के इस एक चरण में क्षत्रप के समस्त जातीय संस्कार और वीर भाव एक साथ व्यक्त होगये हैं। कवि की भाषा की समाहार शक्ति का यह सुन्दर उदाहरण है। सूत्रात्मक शैली के दो एक उदाहरण और दृष्टव्य हैं—

(क) मसज मंत्र मझिवाह
(ख) भरत्रताड हुइ एकवार मोड इसड प्रब पाइजड बार-बार

बड़े बड़े प्रसंगों की योजना के स्थान पर मूल-भाव को स्पष्ट करने वाले ऐसे छोटे छोटे सूत्रात्मक वाक्यों को रख कर कवि ने अपनी रचना को अनावश्यक विस्तार से बचा लिया है।

कवि की भाषा का सौंदर्य उन स्थलों में विशेष रूप से दर्शनीय है जहां उसने डिंगल के अनुरणनात्मक शब्दों का प्रयोग किया है। ऐसे स्थलों में शब्द ध्वनि से ही अभीष्ट अर्थ की व्यंजना होगई है। यथा—

(क) विहु देही वाराणसी सर घु डिय सलेली
घणी मणी मातुली बम्ब बाजा बम्री
वंबिर पर एसुवती वहुनाचे कुभुर महाबली....
(ख) दंह दंबम् दह धुक घु धमियड पर धम धमी....

वचनिका में अधिकतर डिंगल के अपने शब्द ही प्रयुक्त हुए हैं, फिर भी उसमें संस्कृत के तत्सम तद्भव शब्दों की कमी नहीं है। कुछेक अरबी फारसी के शब्द भी इसमें आये हैं पर उन्होंने राजस्थानी चोगा धारण कर लिया है।

यत्र तत्र मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है। यथा—मन भेरव फरएग—हद दर्द कठउ करग की माथा ठेवलिसी कट्टुग की माड बिवाणी सामंड खुद पाणी पाणी सोनउ मर मु-बाह झूम मीहि धाकर पडह यादि।

पूरी रचना को पढ़ कर कहा जा सकता है कि कवि ने अपनी रचना के प्रारंभ में सोनउ मर मु-बाह एक प्रथम भर कवह शिवदास कह कर अपनी प्रतिभा और वर्ण्य विषय के प्रति जो गर्व व्यक्त किया है, उसमें कोई अनुचित नहीं है।

भाव-व्यंजना

शिवदास ने वचनिका की रचना भावेशमयी मनःस्थिति से प्रेरित होकर की है। यह भावेश भाव-जन्य है। अचलदास खीची एवं उसके साथ अन्यान्य अनेक क्षत्रिय और नर-नारियों ने निज-धर्म और जातीय गौरव की रक्षार्थ अपने प्राणों की आहुति देकर जिस आदर्श की स्थापना की है वचनिका उसी की भावमयी अभिव्यक्ति है। फलतः वचनिका में सर्वत्र क्षत्रिय-जाति के साहस और धैर्य एवं त्याग और बलिदान की भावनाओं का ही प्रतिपादन हुआ है—इससे उसमें सहज ही वीर-रस का उद्रेक हो गया है।

वचनिका का प्रधान और अंगी रस है 'वीर' और वीर-रस का स्थायी भाव है 'उत्साह'। 'उत्साह' में आश्रय-पक्ष के औचित्य का अद्भुत बड़ा महत्व है। उत्साही जिस दृष्टि से कर्म को देखता है और लोक जिस दृष्टि से उत्साही तथा उसके कर्म को देखता है वही दृष्टि उत्साह के रसास्वादन में प्रमुख कार्य करती है। लोक ने इसमें यदि किसी प्रकार का अनौचित्य पाया तो समझ लीजिये कि उत्साह का रसास्वादन नहीं हो सकता। उत्साह सदैव सात्विक पक्ष को लेकर चलने वाला भाव है और सात्विकता सर्वत्र लोक-संमत ही होती है।[1] अतएव वीर-रस की निष्पत्ति के लिए यह आवश्यक है कि पहले आश्रय-पक्ष के 'उत्साह' का औचित्य निरूपित करके उसे लोक संमत सिद्ध कर दिया जावे। शिवदास ने ऐसा ही आयोजन किया।

आलंबन-पक्ष (गोरी-पक्ष) सबल-बल आश्रय-पक्ष (अचल-पक्ष) की 'स्वाधीनता का अपहरण करने के लिए चढ़ आया है।[2] उसका यह कृत्य किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। पाठक या लोक उसे कभी न्याय-संगत स्वीकार नहीं कर सकता। अपने विरुद्ध इस दुरभि संधि को देख कर आश्रय-पक्ष में प्रतिक्रिया-स्वरूप

१—श्री नरेन्द्र और रस का शास्त्रीय विवेचन पृ० ४४-४५

२—हयवर गयवर पायदळ पुहवि न पायवार।
  गोरी राउ सिर आवनउ गढ गढ गंजणहार॥

जिस उत्साह-भाव का उद्रेक हुआ है,[1] उसका आधार निश्चित ही सात्विक है और साथ ही वह लोक समर्थ भी है।

आश्रय-पक्ष के इस 'उत्साह' की सात्विकता परखने के लिए कवि ने आलंबन का बहुत बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया है। यथा—

"षट दई पातसाह उत्तर दक्खिन पूरब पच्छिम कउ अदतकार। इसा पुरसारथ प्रभता नहीं पावता '

यदि पतन उत्साह के औचित्य पर आश्रय-पक्ष को विश्वास नहीं होता और उसकी सात्विकता में रंच-मात्र भी संशय होता तो संभव था कि वह आलंबन-पक्ष के सम्मुख झुक जाता पर ऐसी बात नहीं है। आश्रय-पक्ष का उत्साह प्रबल है—सत छाड़ि नहीं बल छांडइ नहीं दीउ न मानइ पागार संचित न हाई इसलिए कवि की वाणी 'लोक-वाणी' बन कर धन्य धन्य की ध्वनि के साथ उसकी पीठ ठोकती है—'धन धन हो राजा अलमेसर बारउ जिमउ जिणि इह पतिसाह संउ सांडउ लियउ।

स्पष्ट है कि कवि ने निर्दोष ही आवरणों दोनों में आश्रय-पक्ष के उत्साह के औचित्य का निरूपण करके उसका पाठक की मनोभावना के साथ तादात्म्य स्थापित कर दिया है। रस-परिपाक के लिए इससे अधिक और चाहिए भी क्या? रस-सिद्धांत के समर्थकों ने इसे ही 'साधारणीकरण' की संज्ञा दी है। अस्तु।

जिस 'उत्साह' भाव की ऊपर चर्चा की गई है उसका वचनिका में आद्यांत संचार हुआ है। अचल की 'गवड न जीवी जीव मरण इसइ-पउ मेलिसउ' आदि पंक्तियों का मूल स्रोत यही उत्साह है। इसी प्रकार अन्तिम वीरांगनाओं के चर-जाल में प्रविष्ट होने 'सामि सरगासि पहसिउ' और बाण-वर्षा के समय स्वयं को आगे करने के निश्चय 'वह वैकुंठ बरसंत—तो मारी हुइसं ठउड' के पीछे भी यही उत्साह है। इसी उत्साह से प्रेरित होकर पाल्हणसी युद्ध में सम्मिलित होने की हठ ठाने हुए है। और प्राण देने के बाद भी इसी उत्साह को जीवित रखना चाहता है। अचल के 'बड पड सीगउ हमारउ बहर सुविलाण गोरी राजा सर्व की अर्थवं' शब्दों से यही भाव व्यक्त हुआ है।

कहने का तात्पर्य यह है कि आश्रय पर आवृत इस उत्साह की जड़ें इतनी गहरी हैं कि बिना अन्याय का प्रतिकार हुए वह कभी ठण्डा नहीं हो सकता। यही कारण है कि जौहर मनाया जाता है जिसकी व्याख्याओं में अधिकतर अवस्थाएं भिन्न-भिन्न

१—(क) साहण माल न सार वैरव धारं न प्रामियइ।
सुविलह गौरी राय-कह सर्वसग सचम् पसार॥
(ख) सर पीठि पग अर्पंड सरद जिहि जाति न पति ..

करती हुई प्रविष्ट हो जाती है– सवि बरणी सिव-विव करे पइसे पावक माहि।' अग्नि में प्रविष्ट होते समय भी उनका उत्साह क्षीण नहीं होता—वे अपने से आगे वाली नारी को पीछे छोड़ कर स्वयं आगे आकर जौहर की ज्वाला में भस्म हो जाती है—

जउहर माहि जलिवाह इसइ तेज पइसइ प्रबल।
पहिली मो रहि पाछली पग एकि पाछे नाइ॥

सात्विक उत्साह के शुभ फल स्वरूप ही आश्रय पक्ष को वीर गति प्राप्त होती है और इहलोक एवं परलोक दोनों मे उसकी कीर्ति ध्रुव– स्थायी हो जाती है—
संसारि नांव आतम सरगि प्रबल येवि कीया प्रबल।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जासकता है कि वचनिका मे 'उत्साह' की तीव्र स्वाभाविक और प्रभावपूर्ण व्यंजना के आधार पर वीर रस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

वचनिका के इस विवेचन से एक विशेष बात जो सामने आती है वह यह है कि इसमें वीर-रस के स्थायी भाव उत्साह का जितना सशक्त प्रतिपादन हुआ है उतना उसके विभाव अनुभाव संचारि आदि भावों का नहीं यद्यपि इनका भी इसमें एकांत अभाव नहीं है।

वचनिका का प्रधान रस तो वीर ही है फिर भी इसमें कुमार पाल्हणसी की अंतिम भेंट के प्रसंग में सहज ही करुण-रस का उद्रेक होगया है। यथा–

पाल्हणसी पूहविहि पहुवउ प्रभि संइया सरमि।
तिणि वेला हीया भरी राइ राइ रोवण लगि॥

इस प्रकार जब हम अचल जैसे वृद्ध पर वीर को आंखों में आंसू भरे हुए पाल्हणसी से भेंट करता हुआ—आंसू पु छि अंकमाल लियउ-देखते है तो हमारा मन करुणा से अभि-भूत हो जाता है। संभवतः ऐसे ही किसी करुण प्रसंग को देख कर भवभूति की वाणी इन शब्दों में फूट पड़ी होगी– अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।'

अचलदास खीची री वचनिका

भाषा शास्त्रीय अध्ययन

१ ध्वनि विचार

(क) <u>प्रयुक्त ध्वनियां</u>

स्वर—अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः

व्यंजन—क ख ग घ ङ

च छ ज झ

ट ठ ड ढ ण

त थ द ध न

प फ ब भ म

य र ल व

स ह (ड़)

(ख) <u>ध्वनि-विकार</u> :

स्वर विकार

अ – इ किंवाड़ (कपाट) मदिमत (मदमत्त) उतिम (उत्तम)

अ – उ मुहंगा (महर्घ)

अ – ए झेह (झर)

इ – ए वेमतिया (विमती) कनेट्ट (कनिष्ट)

इ – अ परवार (परिवार)

ई – ए वेणा (वीणा)

उ – अ मानस (मानुष)

ऊ – इ कापुरिस (कापुरुष)

ओ – ई रीस (रोष)

ऐ – अइ वइर (वैर)

औ – अउ कउतिग (कौतुक)

ऋ – उ पुठि (पृष्ठ)

ऋ – र पंचाम्रत (पंचामृत) व्रद्ध (वृद्ध)

व्यंजन-विकार :

क = ग कउतिग (कौतुक) मुगत (मुक्त) सगति (शक्ति)
क = य दिणियर (दिनकर)
ज = य कवियण (कविजन)
ट = ठ तूटा (त्रुटित)
ट = ड कोडि (कोटि)
त = थ भारथी (भारती)
त = य कीयइ
स्त = थ मायम्पउ
थ = ह पुहवि
द = व उवहि (उदधि)
र्द = ड्ड कवड्ड (कपर्द)
ध = ह रुहिर (रुधिर) कुलवहू (कुलवधू) उवहि (उदधि)
न = ण कवियण (कविजन) सुरताण (सुलतान)
प = व मंडव (मांडव)
प्स = पस अपसरा (अप्सरा)
भ = ह सुहड (सुभट)
म = व धीव (धीम) सावंत (सामंत)
य = ज जुध (युद्ध) जग-जग (युग-युग) ज्याग (यज्ञ) जुगति (युक्ति)
य = व आवस (आयुष)
य = इ रामाइण (रामायण) राइ (राय) माइ (माय)
र्व = ब्ब पव्व (पर्व)
श = स असेस (अशेष) सालिग्राम (शालिग्राम) अस्मेध (अश्वमेध)
ष = ख पुरखारथ (पुरुषार्थ)
दिस = दिठ

२ रूप-विचार

जाति

नर जाति से नारी जाति बनाने के लिए निम्नलिखित प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है—

ई—१ सोलह बरस की पाछी नताणी ....।
२ कोटि अपछराही कहइ।

हणो—१ बैणा पुस्तक पाविणी।
२ धन मेरही मेरहइ जबक तू वरिणी दिन दोइ।

वचन

दोनों वचनों में शब्द-रूप एक समान ही पाये जाते हैं। केवल जिन शब्दों के अन्त में अउ (जो आगे चल कर औ तथा आ हो गया) है उनका बहुवचन बनाने में अउ (ओ औ) का आ कर दिया गया है। उदाहरण—पांडउ (पांडा), सारीख (सारीखा,) वडउ (वडा)।

कारक

(१) अविकारी तथा (२) विकारी। अविकारी रूप शब्द का मूल रूप होता है विकारी रूप अविकारी रूप के आगे प्रत्यय जोड़ कर बनाया जाता है। अविकारी भूतकालिक सकर्मक क्रिया का कर्ता नहीं हो सकता। विकारी भूत-कालिक सकर्मक क्रिया का कर्ता होता है तथा अन्यान्य कारकों के परसर्ग भी उसी के आगे जोड़े जाते हैं।

१ कर्ता कारक

(१) पाएण कहइ
(२) मेवइ मच्छर कइ
(३) चतुरंग दल चडि चाल्या

२. कर्म कारक

(१) हस्ती मेघि चालवइ
(२) पांडव पखालसइ
(३) अनेक राइ मरजादित करि मेल्या
मद मद बीजइ

२ करण कारक

(१) एतरइ हिं दु कारणइ
पांडव मसपटाल कूटे

संप्रदान कारक

कवण-हुइ कई रूठउ (किसको – किस पर)
सब पहुई मेटर घर (सबको – सब में)
अमलेस पर प्रति कहइ सर
कवीर न चीनइ कवण-हुइ

अपादान कारक :

१ हमारउ सहर सुखिआए मौरी राजा-सउं कीम्यउ ।

२ मड-हूंता गड हमहूटी

३ कन्यए का माथा-ईंह खिसी

संबंध कारक

रउ—१ मालवारउ चकरवती

२ राइ कटक-बंध-रउ मारंभ पारंभ

३ सूरउ पलउ प्रथम रउ सर्वदासम्म, सिघार ।

रा— १ मालवा रा कटक बंध ।

केरा—१ कइवा कारणि कवित कोपि कु वासम-केरा ।

का— १ राजा नरसिंघदास-का कु वर ।

अधिकरण कारक :

इ—१ वैरा पुस्तक मारणी कासमीर कंवरि वसंति ।

२ साह सारदा मनि संभरि ।

३ एकइ वन्नि वसंतडा ।

४ एकइ विहारइ ।

५ महंभरि रावरण सूसरउ ।

मांहि–१ कूप मांहि साकर पडइ

संबोधन कारक :

१ बाप हो बाप ।

२ राजा प्रथमेसर कहइ सह भाई हो ।

३ सो नहि हो ठाकुरे ।

४ हे । माइ ।

सर्वनाम :

हउं—हउं ऊमामसि मापरणा मेवे पत्र तिरिण तामि ।

महारउ—सोतिकी सूरज बंसी सुमिस्त्र प्रित महारउ धरा ।

मूम—मूम तणउ साची मुलह ।

मंइ—मंइ कीयउ देहवउ मरण ।

मम्हारइ—मम्हारइ मनि न हुइ सइ ।

मापरण—मापरण दुरंग म थप्पियो ।

आपणा—आपणा देखर पेठ भरतार ।
आप—आप कारणि आप सधारसी ।
आपणउ—आपणउ हीज थियउ किउ आवइ ।
हमारउ—हमारउ वइर सुरिताण गोरी राज मंड कीधयउ ।
हम—ए तउ न दीपइ हम हइ ।
हमारी—सवरी रही हमारी नाहि ।
{तुम्हारी—सुर छूरै सुर पाइ बार तुमारि कीन हनि ।
{तुहारइ—मा स तुहारइ मारणइ ।
{तम्हे—पर तरवार तम्हे नही छूट ।
{तम्हइ—तम्हइ कोइ मानउ आपणमन माहि पहिल ।
तउं—तउं तउं कापुरस कापुरिस ।
थारइ—थारइ थियउ ।
थारउ—थारउ थियउ जिणि पतिवा सउं गोरउ थियउ ।
कउण—हिन्दू राजा कउण कउण ।
कुण—एहवी बात कुण माम मई ।
कउण का भाषा तई दिखी ।
जिकइ—जिकइ मनि पतिसाह की दीसवती ।
जिणि—थारउ थियउ जिणि पतिसाहा सउं सोहउ थियउ ।
जिहि—धीरी समउं तरइ जिहि जाति न पांति ।

संख्यावाचक विसेषण

[क] गणना वाचक

अेक—अेक पवन मर कमइ तिवराय ।
मरण तउ सउ अेक वार ।
अेकई—पतरासी प्र्.न मिया ना अेकइ विहारइ ।
अेकणि—अेकणि दिसि माया मसुर ।
अेकि—अेकि मार्या अेकि मुआ ।
हेक—हाका वीघी हेक ।
तीनि—तीनि पंच ऊपरां ।
पंच—पंच दिसि पड़ी ।

मध्यम पुरुष बहुवचन—

अउ (बहुवचन)

१ तमे कोइ मागउ मारण मन माहि महित ।

उत्तम पुरुष बहुवचन—

आं (बहु वचन)

१ भूखा-भी पेत मरां ।

२ माइ-बाप बीसरां ।

३ धीमि पग ऊभरां ।

४ अभिमान करण सउ करां ।

भूतकाल के प्रत्यय

एकवचन नर जाति

इयउ—

१ पू बलियउ नर पचममी ।

२ छियउ पचासु पुरु ।

३ रिण बेति मेलिह बास्यउ ।

४ बम सालियउ वाणवरणउ ।

इउ—

१ नमनिउ मनमाहि ।

यउ—

रिण बेति मेलिह बास्यउ ।

बहुवचन नरजाति—

इया (बहुवचन)

१ अनेक राइ मनरलित करि मेलिया ।

२ बलिया संकलालिय कटक ।

३ वलिया (चलिया) सन्म नरेन ।

४ हुन हलिया हेकाएकइ नरपति गमे नमेइ ।

या—

१ बास्या स्वामि समाणमी ।

२ उतिमाणा मागी हुवा ।

३ मेकाणि रिपि माया मनुर ।

नारी जाति

ई (एकवचन)

१ कमणधार बिकट मनि पतिसाह की रीन बसी।
२ कउण की माई बिआणी।
३ स्वामी ध्रम मायी मुणए।

मूतकाल के विशेष रूप :

१ कामि न पड चौहाण।
२ कउण हुई वई कठइ।
३ कउण की माई बिआणी।
४ पातसाह ए कन्ह-वंस मयमेसर अमर हूटा।
५ भाट का बरनंबरा हूटा।
६ इंदू-का पाणी हूटा।

भविष्यकाल के प्रत्यय

सी (दोनों वचनों में)

एक व०—हउं उजासी माज बेबै पत विरा वासि।

बहु व०—पपम मरपउ पउ बलि बीरजी बजासिमी।

सां } उत्तम हउं कोसी सों कंत।
} पुरुष
स्यां } बहु व० हम हरस्यां हरपुर दिसा।

पूर्वकालिक कृदन्त

कृदन्त

प्रत्यय इ'

१ मरण देखि परिसाह।
२ गंसपति को सिंहंड-मउ नही ठेमी मवधारि ठेमि।

हेतु कृदन्त

वा—

करिवा

वर्तमान कृदन्त

१ देखती फिरे से
२ भंवर गुमवउ

क्रिया विशेषण कृदन्त

प्रत्यय—

तइ—१ सांचल <u>तइ</u> सूर ।

तां—१ बात <u>कहतां</u> बार लागे ।

घटित प्रत्यय

हार—१ माथा भारंभ पारंभ भागि बड मेमण <u>हार</u> ।

२ राड छुड राखण<u>हार</u> ।

३ भांजण<u>हार</u> ।

ईक—१ मिलइ राव मरण<u>ीक</u> ।

२ कसि पालट करण<u>ीक</u> ।

एरउ (स्वार्थिक प्रत्यय)

१ मोल बाणावी <u>सु सुमेरउ</u> ।

२ पतिसाह हुवा भामा <u>भामिनेरा</u> ।

३ मन <u>मनेरउ</u> ।

क्रिया विशेषण :

काल वाचक

१ तितरइ—<u>तितरइ</u> तऊ बात कहंता बार लागइ ।

२ तई—<u>तई</u> पतिसाह तणेइ ।

३ तब—भति महबत <u>तब</u> मार ।

४ हमइ—<u>हमइ</u> मउं कीजइ ।

५ तिणइ—<u>तिणइ</u> वेला <u>तिणइ</u> तामि ।

६ तब—<u>तब</u> जाइ मे सुहर बड मवनहर दी सिखामणा ।

स्थान वाचक

१ जहं—<u>जंह</u> संचर तहं जाइ ।

२ तहं—जहं संचर <u>तहं</u> जाइ ।

३ जब-तब—<u>जब-तब</u> विघ मधाण कारक की बाजी ।

४ आपी—जलिमाणा <u>आपी</u> हुआ ।

५ ऊपरि—हस्ती की घनघटा सी <u>ऊपरि</u> साम सात सह धनक धर सांकल ।

६ आसपास—स्यउं आणउ स्यउं मरउ <u>आसपास</u> ।

७ सामउ—कउण की भाई बिनाणी सू <u>सामउ</u> रहउ आणीपाणी ।

८ जहां—धीरउ <u>जहां</u> पाणा मोकलसि पासि समउ ।

रीति वाचक :

१ इम—प्रासम अचलेसरि अखई सेन तिम्है इम लमिनी ।

२. इसउ—इसउ कीजइ ।

३ इणिपरि—इणिपरि त्यां सकतां सकतां ।

४ इणीपरि—इणीपरि त्यां अंतराजम धीरी राजा

अन्य क्रिया विशेषण

१ कांइ—केवइ अंतर कांइ ।

२ नइ—लोह कमी नइ सहइ ।

संयोजक

अर—

१ सोनइ अर सुहास ।

२ मेक अखल अर कमई सिवराम ।

तउ—

१ ये बडी बडाई तउ मापरा पाहइ पूछइ न हुए ।

२ सुणिउ हुइ सुणाइ तउ मुक्ति ।

नइ—

पुरष नइ पच्छम लग्गा ।

समास

वचनिका में कुछ समास भी प्रयुक्त हुए हैं। साधारणतया ये दो-दो शब्दों के हैं। यथा—

गीत-रूप गढ़-किवाड़ भाली-भीली राणी-रजताणी गज-घटा धन-घटा गज-दल हर-पुर, धर-आकाश ससि-जमरणी आदि ।

द्विरुक्त-शब्द

कडण कडण, थम थम्भ धसु धसु रमर्द रमर्द जिउरा जिउरा ठोर ठोर ठिवप ठिवप टुक्क टट धरि-धरि, नगर नगर, पथि पथि, पडमि पडमि, बाप बाप मलो मलो भमउ भमउ, मुक्ख मुक्ख माहि माहि, मारवा मारवा बार बार, राइ राइ वैसा वैसी, सहस सहस मइ मइ, मणी मणी, पारंभ पारंभ, मरतो मरती आदि ।

शब्द कोश

वचनिका में संस्कृत के तत्सम शब्द तद्भव शब्द विदेशी (अरबी फारसी) शब्द और डिंगल के अपने शब्द प्रयुक्त हुए हैं। विदेशी शब्द अपेक्षाकृत बहुत ही कम हैं। यथा—

१ तत्सम शब्द

अचला, अचर अंतर अंकमाल अभिमान आरंभ आवास अहित, अति असुर, अनेक उदक, उदास कनक, कलस कला, कांति, कांता, कुसुम खंड-खंड गंध गुण चिता चतुरंग जीवन जाति तेज तिलक, दल देवता, धीर, धन पुर, प्रवाह प्रौढा पंचामृत,प्रजा, परिवार मदोन्मत्त मद-गलित मरण-भय मूल महासती लोक वचन विग्रह, विधि सुकृत, सुवास सभा सहित सकल सहस सबल सारंग आदि।

२ तद्भव शब्द

अजरित, अक्खी आसम किरा कोडि आपरित, ओदस चकरवटी चिहुर चविठ चम्म चैठ, दुचितु, दम्मिर, नेजा, पुरसारण प्रब, पूत पुरव अपिमि आवाइ मोस मुपल, पीस, वहिर, सामि वरत, बैणा, मरिज सामंत सरणि, सकति संप्राप्तो प्रन, अस्त्री, अवस, अंबरि, आवण्वड अचमीतर अमेस जोति (अगनि) आवस्ठ उजासत उत्संघ आदि।

३ डिंगल के कुछ विशेष शब्द

अवहट्टर, आवट्टर, अमोमि अखाड़े उपरांबम अभिगासा संपद रौह गमत्थण अणहव अंबसहार भेज ठाठरि पारीसी झुबसियड थम थमी नवड, मसि मत्तुपि विवाणी हीमा, रणज्जी, गहिबह, घोडा हत्थी वहुडहिया वबड़ आदि।

४ विदेशी शब्द

आलम आला आलमसाह, पतिसाह गोरी शहरि (शहर) मुकाम उम्मर (उम्र) शाह, सिकार आदि।

२

वचनिका

राठोड़ रतनसिंघजी री महेसदासोत री

खिड़िया जगारी कही

कृति और कृतिकार

खिड़िया जगा द्वारा रचित 'वचनिका राठौड़ रतनसिंह महेसदासोत री' राजस्थानी साहित्य भण्डार की स्थायी निधि है। राजस्थान और मालवा में यह इतनी लोकप्रिय रही है कि यदि इसे क्षत्रियों का जातीय काव्य कहा जाय तो अनुचित न होगा। प्रत्येक सुरुचि संपन्न और साहित्य रसिक चारण के पास इसकी हस्तलिखित प्रति अवश्यमेव रहती थी। यही कारण है कि राजस्थानी भाषा के मर्मज्ञ विद्वान टेसीटोरी को अल्पकालिक प्रवास में ही जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर और मालवा के पुस्तक संग्रहालयों से इसकी १० हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हो गई थी जिनमें से कतिपय प्रतियों का लिपिकाल वचनिका में वर्णित धरमत युद्ध की घटना से ३०-४० वर्ष पश्चात का है। डा० टेसीटोरी ने प्राप्त प्रतियों में से ११ प्रामाणिक प्रतियों के आधार पर 'वचनिका' का संपादन करके इसे आज से लगभग ४५ वर्ष पूर्व रोयल एशियाटिक सोसायटी से प्रकाशित करवाई थी। हमने इसे ही प्रामाणिक मानकर अपने अध्ययन का आधार बनाया है।

जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह और मुगल-सम्राट शाहजहां के दो विद्रोही राजकुमारों-औरंगजेब एवं-मुराद-के बीच लड़े गये धरमत (उज्जैन) के युद्ध की पृष्ठ भूमि पर रचित 'वचनिका' एक ऐतिहासिक काव्य है जिसमें रतलाम नरेश रतनसिंह के त्याग और बलिदान को केन्द्र मान कर क्षात्र-धर्म और आर्य-गौरव की प्रतिष्ठा की गई है।

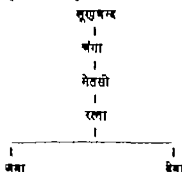
यद्यपि यह ग्रंथ 'वचनिका' नाम से ही प्रसिद्ध रहा है, तथापि कवि ने इसे एक दूसरा नाम 'रासौ रतन' भी दिया है। यथा—

जोड़ि भली खिड़ियो जगौ रासौ रतन रसाल।

महाराजा रतनसिंह के जीवन-चरित से संबन्धित 'रतन रासौ' नामक डिंगल में रचित एक कृति और भी है, जिसका रचयिता सीहू शाखा का चारण कवि कुंभकरण है। कुंभकरण और खिड़िया जगा दोनों समकालीन थे और रतनसिंह के पुत्र रामसिंह के आश्रय में रहे थे। ऐसी स्थिति में दोनों रचनाओं का नाम एक होने से उनकी पहचान में कुछ भ्रम होने की संभावना थी। संभवतः इसी कारण आलोच्य रचना 'वचनिका' नाम से प्रसिद्ध रही है। 'वचनिका' नामकरण होने का एक कारण यह भी है कि शिवदास कृत 'अचलदास खीची री वचनिका' की भांति इसमें भी 'वचनिका' शैली का अनुकरण किया गया है। अस्तु।

खिड़िया जगा का जीवन-वृत्त

वचनिका' के 'ओडि मरी जगी' से यह तो स्वतः सिद्ध है कि इस का रचयिता खिड़िया जगा है। पर इसके अतिरिक्त रचयिता के जीवन-वृत्त के विषय में 'वचनिका' में कुछ नहीं मिलता। डा० तैसीतोरी को चारणों के भाट राव से जगा का जो वंश-वृक्ष मिला था, वह इस प्रकार है—



प्राप्त जानकारी के अनुसार डा० तैसीतोरी ने बताया है कि पहले जगा महाराजा जसवंतसिंह का आश्रित था। उसके पूर्वजों को खाम्बा नामक ग्राम 'शासन' से मिला था। मुगल सम्राट शाहजहाँ ने जब जसवंतसिंह को औरंगजेब और मुराद का दमन करने के लिए भेजी गई शाही सेना का सेनापति नियुक्त किया तब जगा भी उसके साथ उज्जैन के युद्ध-क्षेत्र में गया था। किन्तु जब राजपूत युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर क्षत्रिय परंपरानुसार केसरिया बाना धारण करने लगे तब जगा को युद्ध मे सम्मिलित होने की आज्ञा नहीं दी गई। उसे रतनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र रामसिंह के संरक्षण में रह कर काव्य रचना द्वारा इस युद्ध की घटना को चिर-स्मरणीय बनाने को कहा गया।

कवि (चारण) को युद्ध से विरत रख कर काव्य-रचना द्वारा युद्ध की घटना को अमर बनाये रखने की इस किंवदंती का आधार शिवदास विरचित अचलदास खीची री वचनिका के सम्बन्ध में प्रचलित इसी अभिप्राय की किंवदंती ही प्रतीत होती है।

जगा के महाराजा जसवंतसिंह के आश्रित होने के बारे में डा० तैसीतोरी ने आपत्ति उठाई है जो उचित है। क्योंकि बीकानेर के दरबार ग्रंथालय मे सुरक्षित एक हस्तलिखित ग्रन्थ मे अन्यान्य चारणी गीतों के साथ रतनसिंह की प्रशंसा में लिखित ३ कवित्त मिले हैं, जिनका रचयिता खिड़िया जगा है। संभवतः ये कवित्त जगा ने रतनसिंह के जीवन काल में रचे थे।

यदि जगा को जसवंतसिंह का आश्रित मान भी लिया जाय तो यह संभव नहीं कि उनके जीवित रहते हुए वह रतनसिंह का आश्रय स्वीकार करने और उनका यश गान

उस युद्ध को लेकर करे जिसमें उसके स्वामी जसवन्तसिंह को रणक्षेत्र से विमुख होना पड़ा था। यह धारणा मान्यताओं के विरुद्ध भी है। अन्तः-साक्ष्य के आधार पर भी देखें तो प्रकट होता है कि सम्पूर्ण रचना में कवि रत्नसिंह के प्रति हार्दिक स्वामी भक्ति से ओतप्रोत है। एक बात और भी है-अब तक खिड़िया जगा के नाम से रचित जो भी रचनाएं मिली हैं उनमें रत्नसिंह का ही गुण-गान किया गया है। यदि कवि महाराजा जसवन्तसिंह का आश्रित होता तो वह जोधपुर के राजवंश के बारे में कुछ न कुछ काव्यरचना अवश्य करता परन्तु ऐसी एक भी रचना प्राप्त नहीं है। इन तथ्यों के आधार पर यही मानना न्याय-संगत है कि जगा जसवन्तसिंह का आश्रित न होकर रत्नसिंह का ही आश्रित था।

कवि खिड़िया जगा जसवंतसिंह का आश्रित होने का भ्रम फैलने का कारण यही प्रतीत होता है कि जसवंतसिंह की सेना में खिड़िया जगा नामक एक अन्य योद्धा था। कवि जगा ने भी अपनी वचनिका में इसका उल्लेख किया है। यथा—

इम जोड़े दरियाव, हैवे वहि हरमाल ए।
जोडे रिणमालां जगो रहियो राउ ॥

रामसिंह भी अपने पिता रत्नसिंह की भांति कवियों का आश्रय दाता था। 'रतन रासो' का रचयिता कुंभकरण भी उसके आश्रय में रहता था। जगा ने अपनी 'वचनिका' की रचना रामसिंह के दरबार में रह कर ही की थी। किंवदंती के अनुसार रामसिंह ने जगा को 'मामणिया' और 'बेरी' नामक दो गांव पुरस्कार स्वरूप दिये थे, जिन पर संवत् १९६० तक उसके वंशजों का अधिकार होना बताया जाता है।

इससे अधिक जगा के जीवन-चरित्र के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है। यह माना जाता है कि उसकी मृत्यु रतलाम में ही हुई और वहीं राज-वंश की श्मशान भूमि 'सिमदाय' में उसकी अंत्येष्टि की गयी थी।

वचनिका का रचनाकाल—

कवि ने अपनी कृति के रचना-काल के विषय में कुछ नहीं कहा है। पर धरमत के युद्ध का समय इस प्रकार दिया है—

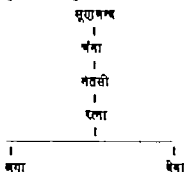
सत वैसाखह तिथि नवमि पनरोत्तरे वरस्सि।
वारि सुक्र जुड़िया विहर हिंदू तुरक वहस्सि ॥

अर्थात् 'सं० १७१५ वि०। में वैसाख के कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि शुक्रवार को हिन्दू और मुसलमान ललकारते हुए भिड़े।

इस प्रकार वचनिका के अनुसार धरमत के युद्ध की तिथि विक्रम संवत १७१५ के वैसाख कृष्ण ९ शुक्रवार निश्चित होती है। फारसी तवारीखों में भी युद्ध का दिन

खिड़िया जगा का जीवन-वृत्त

वचनिका के ओळि भणी जगी से यह तो स्वतः सिद्ध है कि इस का रचयिता खिड़िया जगा है। पर इसके अतिरिक्त रचयिता के जीवन-वृत्त के विषय में 'वचनिका' में कुछ नहीं मिलता। डा० तेसीतोरी को चारणों के भाट राव से जगा का जो वंश-वृक्ष मिला था वह इस प्रकार है—



प्राप्त सामग्री के अनुसार डा तेसीतोरी ने बताया है कि पहले जगा महाराजा जसवंतसिंह का आश्रित था। उसके पूर्वजों को खांडवा नामक ग्राम शासन से मिला था। मुगल सम्राट शाहजहां ने जब जसवंतसिंह को औरंगजेब और मुराद का दमन करने के लिए भेजी गई शाही सेना का सेनापति नियुक्त किया तब जगा भी उसके साथ उज्जैन के युद्ध-क्षेत्र में गया था। किन्तु जब राजपूत युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर क्षत्रिय परंपरानुसार केसरिया वाना धारण करने लगे तब जगा को युद्ध में सम्मिलित होने की आज्ञा नहीं दी गई। उसे रत्नसिंह के ज्येष्ठ पुत्र रामसिंह के संरक्षण में रह कर काव्य रचना द्वारा इस युद्ध की घटना को चिर-स्मरणीय बनाने को कहा गया।

कवि (चारण) को युद्ध से विरत रख कर काव्य-रचना द्वारा युद्ध की घटना को अमर बनाये रखने की इस किंवदंती का आधार शिवदास विरचित अचलदास खीची री वचनिका के सम्बन्ध में प्रचलित इसी अभिप्राय की किंवदंती ही प्रतीत होती है।

जगा के महाराजा जसवंतसिंह के आश्रित होने के बारे में डा० तेसीतोरी ने आपत्ति उठाई है जो उचित है। क्योंकि बीकानेर के दरबार पुस्तकालय में सुरक्षित एक हस्तलिखित ग्रन्थ में अन्यान्य चारणी गीतों के साथ रत्नसिंह की प्रशंसा में लिखित ३ कवित्त मिले हैं जिनका रचयिता खिड़िया जगा है। संभवतः ये कवित्त जगा ने रत्नसिंह के जीवन काल में रचे थे।

यदि जगा को जसवंतसिंह का आश्रित मान भी लिया जाय तो यह संभव नहीं कि उनके जीवित रहते हुए वह रत्नसिंह का आश्रय स्वीकार करले और उसका यश गान

इस युद्ध को लेकर कई विद्वान उसके स्वामी जसवन्तसिंह को रणक्षेत्र से विमुख होना पड़ा था। यह चारणी मान्यताओं के विरुद्ध भी है। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर भी देखें तो प्रकट होता है कि सम्पूर्ण रचना में कवि रतनसिंह के प्रति हार्दिक स्वामी भक्ति से ओतप्रोत है। एक बात और भी है-अब तक खिड़िया जगा के नाम से रचित जो भी रचनाएं मिली हैं उनमें रतनसिंह का ही गुण-गान किया गया है। यदि कवि महाराजा जसवन्तसिंह का आश्रित होता तो वह जोधपुर के राजवंश के बारे में कुछ न कुछ काव्यरचना अवश्य करता, परन्तु ऐसी एक भी रचना प्राप्त नहीं है। इन तथ्यों के आधार पर यही मानना न्याय-संगत है कि जगा जसवन्तसिंह का आश्रित न होकर रतनसिंह का ही आश्रित था।

कवि खिड़िया जगा जसवन्तसिंह का आश्रित होने का भ्रम फैलने का कारण यही प्रतीत होता है कि जसवंतसिंह की सेना में खिड़िया जगा नामक एक अन्य योद्धा था। कवि जगा ने भी अपनी वचनिका में इसका उल्लेख किया है। यथा—

इस जोधे दरिमाउ, हेवै वाहि हरमाल री।
जोधै रिणमालो जगो, खिड़ियो खग ॥

रामसिंह भी अपने पिता रतनसिंह की भांति कवियों का आश्रय दाता था। उस काल का रचित कुछ प्रकरण भी उसके आश्रय में रहता था। जगा ने अपनी 'वचनिका' की रचना रामसिंह के दरबार में रह कर ही की थी। किंवदंती के अनुसार रामसिंह ने जगा को 'भालणिया' और 'बेरी' नामक दो गांव पुरस्कार स्वरूप दिये थे, जिन पर संवत् १९५० तक उसके वंशजों का अधिकार होना बताया जाता है।

इससे अधिक जगा के जीवन-चरित्र के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है। यह माना जाता है कि उसकी मृत्यु रतलाम में ही हुई और वहीं राज-वंश की श्मशान भूमि शिवबाग में उसकी अंत्येष्टि की गयी थी।

वचनिका का रचनाकाल—

कवि ने अपनी कृति के रचना-काल के विषय में कुछ नहीं कहा है। पर धरमत के युद्ध का समय इस प्रकार दिया है—

वद वैसाखह तिथि नवमि पनरोतरै सतरिस।
वारि सुकर वहिया विहद हिंदू तुरक वहसिस ॥

अर्थात् 'सं० १७१५ वि० में वैशाख के कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि शुक्रवार को हिन्दू और मुसलमान लपकाते हुए बढ़े।'

इस प्रकार वचनिका के अनुसार धरमत के युद्ध की तिथि विक्रम संवत १७१५ के वैशाख कृष्ण ९ शुक्रवार निश्चित होती है। फारसी तवारीखों में भी युद्ध का दि

शुक्रवार २२ रजब १०६८ हिजरी दिया गया है। यों यह युद्ध शुक्रवार १६ अप्रेल सन् १६५८ ई० को हुआ था। कविराजा श्यामलदास ने अपने बृहद् इतिहास ग्रंथ 'वीर विनोद' में इस युद्ध की तिथि वैशाख कृष्ण ८ वि० सं० १७१५ तदनुसार ता० २२ रजब सन् १०६८ हिजरी दी है।[1] स्व० डा० यदुनाथ सरकार ने भी इस युद्ध की तारीख १५ अप्रेल सन् १६५८ मानी है जो एफेमेरीज के अनुसार वि० सं० १७१५ वैशाख कृष्ण ८ गुरुवार तथा २२ रजब सन् १०६८ हिजरी के दिन पड़ती है।[2] परन्तु इन सब गणनाओं में फ़ारसी तवारीखों में दिये गये 'शुक्रवार' की उपेक्षा ही हुई है। एफ़ेमेरीज् के उल्लेख की ठीक तरह जाँच करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिजरी तारीख २२ रजब वस्तुतः गुरुवार १५ अप्रैल १६५८ ई० को संध्या समय ही प्रारंभ होकर दूसरे दिन शुक्रवार, १६ अप्रैल, १६५८ ई० को दिन भर रही। अतः खिड़िया जगा द्वारा दी गई तिथि और वार सर्वथा सही है।[3]

यद्यपि इसका कहीं भी कोई उल्लेख नहीं मिलता कि इस युद्ध के कितने समय बाद खिड़िया जगा ने आलोच्य वचनिका की रचना की, परन्तु अनुमान यही है कि युद्ध के पश्चात् शीघ्र ही उसने यह ग्रंथ लिख डाला होगा।

१—कविराजा श्यामलदास—वीर विनोद पृ० ३२४।

२—डॉ० यदुनाथ सरकार—हिस्ट्री ऑफ़ औरंगजेब-भाग १—२ अध्याय १५ पृ० ३४८—५०।

३—डॉ० रघुवीर सिंह—वचनिका रा० रतनसिंघ महेसदासोतरी—(काशीराम शर्मा एवं डॉ० रघुवीरसिंह द्वारा संपादित) पृ० ७८—८१

साहित्यिक आलोचना

वचनिका की कथा

ग्रन्थ का प्रारंभ गणपति-वन्दना विष्णु, शिव शक्ति, एवं सिद्धिदात्री सरस्वती के स्मरण से-मंगलाचरण और देव-स्तुति की परिपाटी के निर्वाह के साथ हुआ है। रतनसिंह की प्रशस्ति एवं उसके वीर-वंश के संक्षिप्त परिचय के अन्तर्गत उसके पराक्रमी पिता महेशदास की कलह-विजय जालौर प्राप्ति आदि वीर कृत्यों का संक्षेप में बखान करने के पश्चात मूल कथा प्रारंभ करायी गई है।

दिल्ली का बादशाह बीमार क्या हुआ मानों जीते जी ही मर गया। वह दिन रात राज-प्रासादों में रहता था। दरबार (दीवान) लगाने तक की उसमें क्षमता नहीं रही। देश में उसकी मृत्यु की अफवाह फैल गई। जिससे शाहजादे अपने अपने क्षेत्रों में शक्ति इकट्ठी कर सरजोर हो गये। पूर्व में शुजा गुजरात में मुराद और दक्षिण में औरंगजेब छत्रधारी शासक बन बैठे। यह देख कर शाहजहां और दाराशिकोह उन पर कुपित हुए। शाहजहां ने अपने दो विश्वस्त सहयोगी हिन्दू राजा जयसिंह और जसवंतसिंह को बुलवाया और उन्हें द्रव्य-हाथी-घोड़े आदि देकर विद्रोही राजकुमारों का दमन करने के लिए भेजते हुए कहा 'पतिसाही थां ऊपरां'। जयसिंह अपनी फौज सहित शुजा से लड़ने के लिए पूर्व में भेजा गया और अकेला जसवंतसिंह औरंगजेब और मुराद से लड़ने के लिए नियुक्त किये गये। जसवंतसिंह ने शाही उमरावों और राठौड़ कछवाहा सिसोदिया, हाडा गौड़, जादव झाला आदि छत्तीसों वंशों के वीर योद्धाओं को साथ लेकर के मालवा से प्रस्थान किया। उसके साथ तोपों बन्दूकों और गोलों से लैस हाथियों घोड़ों एवं ऊंटों की विशाल वाहिनी थी-शाही ध्वजा आकाश के मध्य लहरा रही थी। द्रुत गति प्रस्थान करती हुई यह शाही सेना ऐसी प्रतीत होरही थी मानो बेतवती नदी पहाड़ से पानी लेकर निकल रही हो। काले ऊंटों की चपल और दीर्घ सैन्य-पंक्तियां ऐसी थी मानो भादव मास के बादल घिर आए हों। इस विराट वाहिनी के प्रयाण से आकाश फटा जारहा था समुद्र उद्वेलित था पर्वत टूक-टूक होकर पृथ्वी से लग गये नदी नालों का पानी सूख गया और घोड़ों की टापों से उड़ी धूल से आकाश धुंधला होगया। इस प्रकार जसवंतसिंह दल-बल सहित विद्रोही शहजादों से लोहा लेने के लिए उज्जैन-पथ पहुंच गया।

जसवंतसिंह ने अपने बांधव रतनसिंह को बुलवाया वह हथियार और कालीवाला किमाड' रतनसिंह तुरन्त शाही सेना में आ मिला।

उधर दोनों भाई-औरंगजेब और मुराद भी आकर अड़ गए। नगाड़े गड़गड़ा उठे। दोनों सेनाओं ने कूच किया। पौरुष प्रेरित योद्धा हड़बड़ा कर घोड़ों पर चढ़े। प्रतिद्वन्द्वी सेना का वेग ऐसा था मानो नौ सौ नदियां बल जोर के साथ समुद्र से मिलने चली हों। तुर्क जाति के विकट वीर शस्त्रास्त्र धारण कर चढ़ दौड़े। गुजरात और दक्षिण की संयुक्त सेना रौद्र रूप धारण कर उज्जैन की ओर उन्मुख हुई। अश्व गज और पैदल सेना के पट्ट ऐसे प्रतीत होरहे थे जैसे इन्द्र ने वर्षा की झड़ी लगाने हेतु बादलों के समूह सजाए हों। दोनों यवन राजकुमार रत्न-जटित हेम-कवच धारण कर गर्व से मूंछों पर बल देते हुए एवं चंवर डुलवाते हुए मेघोपम हाथियों पर सवार हुए। काहल भग्यान्त भेरी नफेरी और तुरही का नाद हुआ। गज चमकने लगे और योद्धों की हौंस हुई। चमचमाते हुए नेजों के साथ सेनाएं ध्वजाएं फहराने लगी। यवन-अश्वों की टापें पाताल में प्रतिध्वनित होने लगी। आकाश में रज छागई मानो आकाश के मध्य एक अन्य आकाश और बन गया। शेष-नाग कंपित हो उठा सारी धरा धमक सी रह गई मानों सातों समुद्र पृथ्वी पर उमट आये हों। इस प्रकार शाहजादों की सेना भी उज्जैन आ पहुंची। अब दोनों ओर की सेनाएं आमने-सामने आकर डट गई।

औरंगजेब और मुराद ने जसवंतसिंह को एक फरमान लिख कर कहा कि— राजा। हमारा रास्ता मत रोको। युद्ध न ठानो। हमें दिल्ली जाने दो। हम बादशाह के चरण स्पर्श कर वापस लौट जाएंगे।' परन्तु जसवंतसिंह ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और कहा मुझे तुम्हें रोकने के लिए भेजा है फिर मैं तुम्हें कैसे जाने दूं? तदुपरांत उसने अपने प्रमुख सामन्तों को परामर्श के लिए एकत्र किया। सामंतों ने कहा आप जितना चतुर कौन है? फिर भी आप राठौड़ रतनसिंह से परामर्श ले लें वह युद्ध आदि में निपुण है।

जसवंतसिंह ने रतनसिंह से परामर्श कर व्यूह रचना की और अपने विभिन्न योद्धाओं को यथोचित स्थानों पर नियोजित कर दिया। इस प्रकार अपनी सेना को तीन भागों-हरावल चन्दोल और गोल-में विभक्त कर जसवन्तसिंह स्वयं भी गोल में खड़े होगए और बोले— ये दोनों भाई-शाहजादे-बरछ लेकर हमें ललकारने लगे हैं और उत्साह से आकाश को स्पर्श कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में हम भी रामायण जैसा युद्ध रचेंगे और चन्द्रमा सी धवल कीर्ति के भागी बनेंगे। जसवन्तसिंह का यह आह्वान पाकर रतनसिंह ने निवेदन किया 'हे कुल-दीपक युद्ध का समस्त भार मुझे सौंप कर आप जोधपुर चले जाइये और अपने वंश की रक्षा कीजिये। आपका युद्ध से विरत होना नीति विरुद्ध नहीं है क्योंकि दुर्योधन भी युद्ध-क्षेत्र से हट गया था और श्रीकृष्ण भी कालयवन के सम्मुख पलायन कर गए थे। यदि मेरे प्राणोत्सर्ग से ही राज्य की रक्षा होगई तो राठौड़ों को कोई बुरा नहीं कहेगा। औरंगजेब से कहलवा दीजिये कि वह द्वितीय महाभारत के लिए प्रस्तुत होजाए।

परन्तु जसवन्तसिंह युद्ध न विरत नहीं हुए । उन्होंने रत्नसिंह को मरण-व्रत दे दिया । रत्नसिंह अपने शिविर मे लौट आये । उन्होंने जप-तप दान-पुण्य इष्ट देवा का पूजन आदि करवाया और अपने योद्धाओं म मिष्टान्न वितरित करवा कर उन्हें उज्जैन जैसे पवित्र तीर्थ-स्थान में बारा-स्नान कर स्वामी-धर्म क्षात्र-तेज और आर्यमर्यादा की रक्षा के लिए प्रेरित किया । सामन्तों ने सर्व सम्मत हो इस आह्वान का स्वागत किया । कविजन सामन्तों को उत्साहित करने लगे और भाट एवं चारण विरदावली गाने लगे ।

मारवाड़ के वीर धर्मों में उत्साह का तूफान आया बड़ा राग बजा और वे विकट युद्ध के लिये आतुर हो उठे । सिंहद्वार खोल दिये गये । दूसरे दिन औरंगजेब ने कुरान का और जसवंतसिंह ने वेदों का पाठ करवा कर दोनों ने परस्पर युद्ध के लिए चुनौती भेज दी ।

भीषण प्रलयकारी युद्ध हुआ । अल्लाह-अल्लाह और हरि-हरि के घोष के साथ दोनों दल एक दूसरे का संहार करने लगे । युद्ध की विभीषिका को देखने के लिए सुर-असुर आ पहुँचे । डाकिनियां मंगल गाना गाने लगी । तीन प्रहर तक युद्ध चलता रहा । राजपूत अपूर्व वीरता से लड़े पर औरंगजेब की विजय निश्चित सी होगई । चौथे प्रहर में भी युद्ध का अन्त समीप न देख कर राठौड़ योद्धा रिणमल अपने साथियों को संबोधित कर बोला 'युद्ध शतरंज का खेल है । इसमें राजा के सुरक्षित रहने पर ही बाजी रहती है । औरंगजेब पातशाह हुआ समझो । किसी प्रकार महाराज जसवंतसिंह को युद्ध से बाहर निकालो । निदान जसवंतसिंह युद्ध से बाहर निकाल दिये गये और उनके स्थान पर रत्नसिंह ने सेनापतित्व का स्थान ग्रहण किया । भारथ (युद्ध) की लाज अब रत्नसिंह की भुजाओं पर आ टिकी । वह मस्तक पर मौड़ बांध कर और भुजाओं में मार्ग-वीरत्व को धारण कर शत्रु-सेना पर पिल पड़ा । उस समय वह ऐसा लगता था मानो महाभारत के युद्ध में कर्ण अथवा लंका के युद्ध में कुंभकर्ण हो । युद्ध ने और भी विकराल रूप धारण कर लिया और योद्धा तलवारों से होली खेलने लगे और अप्सराएं वीरों का वरण करने लगी । अनेक क्षत्रिय योद्धा वीर गति को प्राप्त हुए जिनकी धरी टूक-टूक हुए । अंत में रत्नसिंह भी शत्रु संहार करता हुआ धराशायी हुआ । उसके १०० बाण एवं २६ भाले लगे और तलवार के ८ घाव आए ।

रत्नसिंह के धराशायी होते ही औरंगजेब की विजय दुंदुभि बज उठी । रत्नसिंह के साथी वीरों ने उसके छिन्न-भिन्न अंगों को एकत्र करके बाणों और भालों के खण्डों से चिता तैयार की और उसकी नर-देह को भस्म करदी । रत्नसिंह को अमरत्व प्राप्त हुआ । ब्रह्मा विष्णु महेश इत्यादि देवता उसके सम्मुख उपस्थित हुए और उसे वैकुण्ठ चलने की प्रार्थना की । रत्नसिंह ने देवताओं से अपने वीर-गति प्राप्त साथियों के

उधर दोनों भाई-औरंगजेब और मुराद-भी आकर खड़े हुए। नगाड़े गड़गड़ा उठे। दोनों सेनाओं ने कूच किया। पौरुष प्रेरित योद्धा हड़बड़ा कर दोनों पर बढ़े। प्रतिद्वन्द्वी सेना का वेग ऐसा था मानो भी सौ नदियां बड़े जोर के साथ समुद्र से मिलने चली हों। तुर्क जाति ने विकट और सहस्रत्राण धारण कर यह दौड़े। गुजरात और दक्षिण की संयुक्त सेना रौद्र रूप धारण कर उज्जैन की ओर उन्मुख हुई। अश्व गज और पैदल सेना के बढ़ ऐसे प्रतीत होरहे थे जैसे इन्द्र ने वर्षा की झड़ी लगाने हेतु बादलों के समूह सजाए हों। दोनों यवन राजकुमार रत्न-जटित हेम-कवच धारण कर गर्व से मूंछों पर बल देते हुए एवं चंवर डुलवाते हुए मेघोपम हाथियों पर सवार हुए। काहल भरवाल्य भेरी नफेरी और तुरही का नाद हुआ। गज गमकने लगे और दोनों की होश हुई। चमचमाते हुए तेजों के साथ सेनाएं ध्वजाएं फहराने लगी। यवन-अश्वों की टापें पाताल में प्रतिध्वनित होने लगी। आकाश में रज छाई मानो आकाश के मध्य एक अन्य आकाश और बन गया। शेष-नाग कंपित हो उठा सारी धरा थरक सी रह गई मानों सातों समुद्र पृथ्वी पर उलट आये हों। इस प्रकार शाहजादों की सेना भी उज्जैन आ पहुंची। अब दोनों ओर की सेनाएं आमने-सामने आकर डट गई।

औरंगजेब और मुराद ने जसवंतसिंह को एक फरमान लिख कर कहा कि— राजा। हमारा रास्ता मत रोको। युद्ध न ठानो। हमें दिल्ली जाने दो। हम बादशाह के चरण-स्पर्श कर वापस लौट आएंगे।' परन्तु जसवंतसिंह ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और कहा मुझे तुम्हें रोकने के लिए भेजा है फिर मैं तुम्हें कैसे जाने दूं ?' तदुपरांत उसने अपने प्रमुख सामन्तों को परामर्श के लिए एकत्र किया। सामंतों ने कहा आप जितना चतुर कौन है ? फिर भी आप राठौड़ रतनसिंह से परामर्श लें जो व्यूह युद्ध आदि में निपुण है।'

जसवंतसिंह ने रतनसिंह से परामर्श कर व्यूह रचना की और अपने विभिन्न योद्धाओं को यथोचित स्थानों पर नियोजित कर दिया। इस प्रकार अपनी सेना की तीन भागों-हरावल चन्दोल और बोल-में विभक्त कर जसवन्तसिंह स्वयं भी बोल में खड़े होगए और बोले— ये दोनों भाई-शाहजादे-कदम लेकर हमें ललकारने लगे हैं और उत्साह से आकाश को स्पर्श कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में हम भी रामायण जैसा युद्ध रचेंगे और चन्द्रमा सी धवल कीर्ति के भागी बनेंगे। जसवन्तसिंह का यह आह्वान पाकर रतनसिंह ने निवेदन किया है कुल-दीपक युद्ध का समस्त भार मुझे सौंप कर आप जोधपुर चले जाइये और अपने वंश की रक्षा कीजिये। आपका युद्ध से विरत होना नीति विरुद्ध नहीं है क्योंकि दुर्योधन भी युद्ध-क्षेत्र से हट गया था और श्रीकृष्ण भी कालयवन के सम्मुख पलायन कर गए थे। यदि मेरे प्राणोत्सर्ग से ही राज्य की रक्षा होजाई तो राठौड़ों को कोई दुःख नहीं रहेगा। औरंगजेब से कहलवा दीजिये कि वह द्वितीय महाभारत के लिए प्रस्तुत होजाए।

लिए भी वैकुण्ठ वास की व्यवस्था करने का अनुरोध करते हुए १२ दिन तक प्रतीक्षा करने को कहा जिससे कि उसकी रानियां भी सती होकर उसकी सहगामिनी हो सकें। विष्णु ने यह अनुरोध स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् वैकुण्ठनाथ ने विश्वकर्मा को रत्नपुरी नामक एक नगरी का निर्माण करने की आज्ञा दी। नगरी का निर्माण दैवी-चमत्कार से तत्काल होगया। फिर विष्णु भगवान ने एक सभा का आयोजन कर रत्नसिंह को अपने पास बिठाया देवताओं ने उसके चंवर डुलाए एवं सूर्य और चन्द्रमा उसके छत्रधारी बने। रंभा, उर्वशी आदि अप्सराओं का हाव भाव-पूर्ण नृत्य हुआ और छह रागों छत्तीस रागिनियों एवं सप्त-स्वरों में संगीत होने लगा।

इसी समय रत्नसिंह की मृत्यु का समाचार उसकी रानियों को मिला। उसकी चार रानियां-भटियाणी सगतसुतादे कुसालदेवी और सुजाणदे और तीन उपपत्नियां सती होने को प्रस्तुत हुईं। उन्होंने गंगा-स्नान कर वस्त्राभूषण धारण कर सोलह शृंगार किये, परंपरानुसार ताम्बूल कपूर आदि का सेवन किया और दान पुण्य करवा कर घोड़ों पर सवार हो सरोवर की पाल पर आ पहुँची। वहां हर-गौरी की पूजा कर जन्म जन्मांतर तक रत्नसिंह को ही भर्तार रूप में प्राप्त करने की कामना की। फिर पृथ्वी आकाश पवन जल सूर्य और चन्द्रमा को प्रणाम किया और आरोगी की परिक्रमा करती हुईं अपने परिजनों को अंतिम आशीष देकर हरि-हरि की ध्वनि के साथ अग्नि में प्रविष्ट हो गईं।

अपनी काया को होम कर सतियां विमान द्वारा स्वर्ग को पहुँची। देवांगनाओं ने पुष्प वर्षा कर उनका स्वागत किया और उन्हें रत्नसिंह के पास पहुँचा दिया। देवों ने आकाशवाणी द्वारा रत्नसिंह को बधाई दी। इस प्रकार उसका यश अमर हो गया।

वस्तु विन्यास

वचनिका एक खण्ड-काव्य है। खण्ड काव्य को साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने एक देशानुसारी कहा है। तात्पर्य यह कि इसमें एक देश या अंश का अनुसरण होता है। उसमें किसी एक महत्वपूर्ण घटना का आयोजन-किसी महान व्यक्तित्व के जीवन के एक ही पक्ष का विश्लेषण होता है। खण्ड-काव्य में पूर्ण जीवन का चित्रण होना चाहिए। उसकी कथा की क्रमबद्धता एवं सुष्ठु संगठन अनिवार्यतः अपेक्षित है।

वचनिका इन सभी विशेषताओं से युक्त है। इसमें रत्नसिंह के जीवन की एक ही घटना—युद्ध और स्वर्ग-प्राप्ति का चित्रण हुआ है। वचनिका की वस्तु अत्यंत संक्षिप्त है। प्रासंगिक वस्तु के लिए तो खण्ड-काव्य में अवकाश ही नहीं रहता है। फलतः इसमें कोई प्रासंगिक कथा नहीं है। आधिकारिक कथा में भी 'कार्यफल' की ओर उन्मुख

करने वाले भावात्मक प्रसंगों को लिया गया है। कथा-वस्तु सुसंगठित है। और यदि हम रतनसिंह की स्वर्ग प्राप्ति को कथा का 'कार्य' (फल) मानें [1] तो इसमें विभिन्न अवस्थाओं का भी सुचारु निर्वाह हुआ है।

औरंगजेब और मुराद के विरुद्ध भेजी गई शाही सेना के सेनापति के रूप में उज्जैन पहुंचते ही महाराज जसवंतसिंह रतनसिंह को युद्ध में सम्मिलित होने के लिए बुलावा भेजते हैं। रतनसिंह तत्काल उपस्थित होता है— 'हरिलमार भेजो हमो मालो तथा किवार' (प्रारंभ)। औरंगजेब के युद्ध न करने के प्रस्ताव को ठुकरा कर जब जसवंतसिंह अपनी सेना की व्यूह-रचना कर 'खेत' में खड़े होकर रामायण जैसा युद्ध रच कर उज्ज्वल कीर्ति का भागी होने का आह्वान करते हैं तब रतनसिंह जसवंतसिंह से निवेदन करता है कि युद्ध का सम्पूर्ण भार उसे सौंप कर वे युद्ध से विरत हो जायें रण का भारोग उसे दे दिया जाय—

वे सोपो पतिसाह मूम्क दल।
सबसी भाव मरण झलि सबल॥
मरस तणो सो भी दे मोनू।
टीको राज करउ खल तोनू॥
साटे कर भोमवि तिल ताथा।
रिणु आखो मूक्त दे पाथा॥

यही 'यत्न' है।

तदुपरान्त रतनसिंह 'मरण-व्रत' धारण कर—स्नान करके मरण मनोरथ कीया—जप-तप दान-पुण्य, इष्टदेवों की पूजा आदि करवाता है और उज्जैन के रण-क्षेत्र में तीसरा महाभारत रचने का संकल्प करके अपने साथी योद्धाओं 'उजेण-खेत भारथ तीरथ सिवी रो परम सांचवी जै' का आह्वान करता हुआ युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाता है। इस प्रकार प्रयत्न सफल होता है—पर अभी बाधा है क्योंकि जसवंतसिंह युद्ध में सम्मिलित होने का अपना निश्चय दृढ़ रखते हैं (प्राप्त्याशा)। भयंकर युद्ध होता है जिसमें जसवंतसिंह विपक्षियों द्वारा घेर लिए जाते हैं। इस विकट घड़ी में योद्धा रिणमल अपने साथियों से कहते हैं— 'ठाकुरे सतरंज री बवास वणिमो राजा पाछिवे बाजी रहे।' 'कोसी बाजी पतराज काढी'। इस पर जसवंतसिंह युद्ध से बाहर हो जाते हैं और रतनसिंह उनके स्थान पर सेनापतित्व ग्रहण कर युद्ध का भार अपने ऊपर लेता है। यहां आकर

१—यही उचित भी है क्योंकि कवि ने स्वयं कहा है कि मुक्ति के लिए रतन और भूमि के लिए बाहबारे परस्पर भिड़ गये—

मयामत भजि रतन मुगति
भिड़ी रवि आपहिया असपति॥

रत्नसिंह की वीर-गति निश्चित हो जाती है (नियताप्ति)। इसके पश्चात् रत्नसिंह अपने साथियों के साथ शत्रु संहार करता हुआ वीर-गति को प्राप्त होता है— साथ रौ कोट उज्जैणि सवि पिढि रतन राज पढे' और वैकुण्ठवास ग्रहण कर समरस प्राप्त करता है (फलागम)।

स्पष्ट है कि वचनिका की कथा अत्यंत संक्षिप्त है। कवि इतिहास की एक घटना को लेकर चला था और इतिहास की सीमा ही उसे मान्य थी। वचनिका में कवि का ध्येय रत्नसिंह को नायक के रूप में प्रतिष्ठित करके उसका कीर्ति-स्तवन करना था— 'बाखाणू कमधज्ज पुहवि राजा प्रभपति। परन्तु इतिहास की दृष्टि से रत्नसिंह का कोई महत्व नहीं है। जिस युद्ध की घटना को आधार बना कर कवि अपने आश्रय दाता रत्नसिंह का नायकत्व प्रतिपादित करने चला है उसका सेनापतित्व शाहजहां द्वारा महाराजा जसवन्तसिंह को सौंपा गया था, जिसमें रत्नसिंह की स्थिति उनके अधीन अन्यान्य सामंतों के समान ही थी। साथ ही ऐतिहासिक सत्य के निर्वाह के लिए यह भी आवश्यक था कि जसवंतसिंह युद्ध की कथा में प्रमुख एवं विशिष्ट बने रहें और सम्पूर्ण कथा प्रवाह उन्हें बराबर साथ लेकर आगे बढ़े। ऐसी स्थिति में रत्नसिंह को नायक के रूप में अवतरित करके कथा-सूत्र का संयोजन करना एक कठिन और दुष्कर कार्य करना है। किन्तु जगा ने अपनी अद्भुत कल्पना-शक्ति और वर्णन कौशल से कथा-क्रम को इस प्रकार मोड़ दिया है कि रत्नसिंह शनैः शनैः कथा-क्रम में विशिष्टता ग्रहण करता हुआ स्वाभाविक रूप से नायकत्व धारण कर लेता है।

ग्रन्थ के प्रारंभ में ही कवि रत्नसिंह के पराक्रमी और तेजोमय वंश का आख्यान करने के साथ ही उसका 'रट रांसु भांण रतन करतब्ब भारथ कन' और 'सुत पूर्वे साहिजहान मना' के रूप में परिचय देता है। उज्जैन पहुंचने पर जसवंतसिंह रत्नसिंह को बुलावा भेजते हैं—बांधव रतन बुलावियो बसी स्वगरियुं संग—तो यह परिचय उसके प्रति आकर्षण में बदल जाता है और जब वह अपनेसंग पहाड़ उज्जैन में जसवंतसिंह से आकर मिल जाता है तब तो यह आकर्षण रत्नसिंह के प्रति आत्मीयता में बदल जाता है। इस प्रकार से रत्नसिंह अत्यन्त ही स्वाभाविक रूप से कथा-भूमि पर प्रवेश करता है। पर अभी कथा का केन्द्र जसवंतसिंह ही है। औरंगजेब द्वारा 'राह मफरि इक तरफि रहि आगे पीछे आव के आशय का फरमान भेजने पर वही उसका उत्तर भी वां आवै मैसिहुमी-कहो जांण द्यू केमि'—कह कर देता है। किन्तु जब जसवंतसिंह के द्वारा युद्ध के विषय में अपने सामंतों की सम्मति चाहे जाने पर राज सिवरो कुरा जांणे के साथ ही यह कहा जाता है कि 'सुत वंश सबी भ्रम जाणपर राजा बलि बुज्झो रतन'—तब रत्नसिंह की बराबरी में आ जाता है। जिसकी पुष्टि जसवंतसिंह के द्वारा रत्नसिंह की मन्त्रणा से व्यूह रचना किये जाने से हो जाती है—

बैठा है आलोच महावर
सू पतिसाह सुमरण समहर।

किन्तु एकाएक ही महाराज जसवंतसिंह जब 'जोश' में खड़े होकर 'रिण रामारण जिसो रचावां। जठै मरां अंतराल मिलावां' का आह्वान करते हैं तो फिर उसका व्यक्तित्व उभर उठता है पर दूसरे ही क्षण बात बदल जाती है। रतनसिंह मरण का सुख मांगता हुआ—'मरण तणो सो ओ है मोनूं'—जसवंतसिंह से युद्ध का संपूर्ण भार उसे सौंप कर—'रिण आपणो मूझ दे राजा' युद्ध से विरत हो जाने के लिए निवेदन करता है और औरंगजेब को युद्ध की चुनौती भेजने के लिए कहता है। यहां वह पाठक को आश्चर्य चकित करता हुआ कथा—नेता बन जाता है। उसकी स्थिति उस समय और भी सुदृढ़ हो जाती है जब जसवंतसिंह भी उसे स्वर्ग के लिए सीख दे देते हैं—

'मतो दिराड़ दिनो राव माफ
सीख रतन कीध भ्रम साफ।

यहां रतनसिंह का व्यक्तित्व संपूर्ण कथा पर छा जाता है। वह मरण-व्रत धारण कर दान-पुण्य जप-तप करवाता है और युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाता है। अपने वीर साथियों को एकत्र कर वह शत्रु तोलता हुआ धन्य-धन्य होकर भी 'मरणी रो काम सभी रो धरम' पालन करने का आह्वान करता है जिसका सभी वीर दृढ़ संकल्प हो स्वागत करते हैं। यहां तक आते-आते जसवंतसिंह पृष्ठ-भूमि में पड़ जाता है। आगे चल कर पांच-सात बार जसवंतसिंह का नाम आता है, वह भी कथा-सूत्र की एकता और प्रबंध-निर्वाह की दृष्टि से। तदुपरांत शत्रु-पक्ष की विजय निश्चित हो जाने पर जसवंतसिंह अपने साथी सामंतों के आग्रह पर युद्ध से पलायन कर जाते हैं। फलतः रतनसिंह युद्ध का सम्पूर्ण भार ग्रहण कर—'धारन री भर भारतनायीर भलिया' पूर्ण नायकत्व धारण कर लेता है। यहां आकर कवि की उल्लसित वाणी 'धन्य-धन्य' की ध्वनि के साथ जसवंतसिंह की तुलना में रतनसिंह को ऊंचा उठा देती है—

किधो अवेरणी कमधजै मन औधनभ्रित मांहि।
अहि मुरड़ै भजियो जसै रतन मच्छि रांहि॥

आगे चल कर कवि ने रतन के बल, और पराक्रम का विशद और हृदयग्राही वर्णन करते हुए उसकी वीर-गति को चित्रित किया है। अंत में रतनसिंह को 'धर्म' के रूप में वैकुण्ठ-वास (अमरत्व) प्राप्त होता है और उसका यश चिर-स्थायी हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि ने जसवंतसिंह को कथा में प्रधानता देते हुए भी रतनसिंह को नायक के रूप में प्रतिष्ठित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। विशेषता यह है कि रतनसिंह को नायकत्व प्रदान करके भी उसने जसवंतसिंह की चारित्रिक गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रखा है।

वस्तु-विन्यास में भी जग्गा ने सर्वत्र औचित्य और संगति का निर्वाह किया है और उसमें आद्योपांत तारतम्य और एकरूपता बनाए रखने का प्रयास किया है। इतना सब कुछ करने के उपरान्त भी उसने कहीं भी ऐतिहासिक सत्य की हत्या नहीं की है। कवि का यह कौशल सराहनीय है। संपूर्ण चारणी-साहित्य में जग्गा की वचनिका सी सुन्दर कथा-क्रम युक्त और इतिहास-सम्मत रचना शायद ही कोई मिलेगी।

वर्णन

वचनिका एक वर्णन प्रधान रचना है। कथा स्वल्प है विभिन्न वर्णनों द्वारा उसका कलेवर बढ़ाया गया है। इसमें निम्नलिखित वर्णन आए हैं—

१ रतनसिंह का वंश-वर्णन।
२ शाही सेना के प्रस्थान का वर्णन।
३ औरङ्गजेब की सेना का वर्णन।
४ हाथियों का वर्णन।
५ घोड़ों का वर्णन।
६ क्षत्रिय वीरों का वर्णन।
७ मुगलों का वर्णन।
८ ऋतु वर्णन।
९. युद्ध वर्णन।
१०. विश्वकर्मा द्वारा निर्मित रतनपुरी (नगर) का वर्णन।

इतने अधिक वर्णनों से काव्य के कथा-प्रवाह में विराम आया है और कथा की एकसूत्रता भी भंग हुई है। परन्तु हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि कवि के पास कहने के लिए कोई स्थूल कथा नहीं है। यह कथा तत्व के रूप में केवल युद्ध की एक घटना और अपने चरित नायक के शौर्य एवं बलिदान की बात को लेकर चला है। ऐसी स्थिति में इस रचना में यदि युद्ध और युद्ध सम्बन्धी अन्य वर्णन आए हों तो कोई आश्चर्य नहीं। और फिर कवि के सम्मुख दीर्घ काल से चली आ रही वीर-काव्य परम्परा का आदर्श भी तो था जिसमें वर्णन ही प्रधान थे।

वचनिका में वर्णन प्रायः प्रसंग और भाव के अनुरूप होकर आए हैं। इनसे काव्य-सौंदर्य में वृद्धि हुई है और कवि की प्रतिभा का उत्कर्ष भी प्रकट हुआ है। फिर भी हाथी घोड़ों सरदारों (क्षत्रियों) मुगलों आदि के वर्णन खटकने वाले हैं, इनसे कथानुबन्ध में शिथिलता आई है। कवि चाहता तो इनसे बच भी सकता था, संभवतः युद्ध के अनुकूल वातावरण निर्माण की दृष्टि से ही उसने इन वर्णनों का आयोजन किया है। वस्तुतः ये वर्णन युद्ध का वातावरण निर्मित करने में नितांत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं और इनसे वीर-रस के परिपाक में भी सहायता मिली है।

कवि नाम-परिगणन शैली से भी नहीं बच सका है, किन्तु अन्यान्य वीर काव्यों की भांति इसमें कोरी इतिवृत्तात्मकता नहीं है। कवि ने नाम के परिगणन के साथ संवादों और वीर-भावों की अवतारणा करके वर्णनों में एक प्रकार की नाटकीय त्वरा का समावेश कर दिया है जिससे वे सरस बन गये हैं। वीरोक्तियों से वीर-रस का 'उत्साह' भाव परिपुष्ट हुआ है।

कवि वर्णन-पटु है। उसके वर्णनों में अतिशयोक्तियां हैं फिर भी वे जीवन से एक दम परे नहीं हैं। उनमें प्रभावित करने की अद्भुत क्षमता है। वर्णनों में कवि ने सादृश्य मूलक अलंकारों का ही वर्णन किया है। उपमानों की योजनाओं में न केवल सादृश्य अपितु साधर्म्य का ध्यान रखा गया है। वे रूप गुण और क्रिया का तीव्र अनुभव कराने में समर्थ हैं ही साथ ही भावानुकूल भी। ऐसे वर्णनों में पाठक एकदम साधारणीकृत हो जाता है।

अवसर न होते हुए भी युद्ध-वाहिनी का वर्णन करते हुए षट्-ऋतु वर्णन और नव-रस वर्णन के लिए अवसर निकाल कर परंपरा-पालन करने का प्रयास किया है। ऋतु-वर्णन का प्रारंभ ग्रीष्म ऋतु से हुआ है। कवि ने नितांत ही प्रसादान्त वचनिका शैली में षट्-ऋतुओं एवं नव रसों का संक्षेप में वर्णन किया है जो भाषा और शैली दोनों की दृष्टि से राजस्थानी भाषा के गद्य का सुन्दरतम उदाहरण है। पर यह वर्णन केवल उपमानों के आधार पर खड़ा किया गया है। फलतः यह परंपरा युक्त ही कहा जायगा। सब होने पर भी कवि ने इसे अनावश्यक विस्तार न देकर कथा-क्रम को भंग होने से बचा लिया है।

युद्ध में वीर गति प्राप्त करके रत्नसिंह अमरत्व प्राप्त करता है। वैकुण्ठनाथ उसके स्वागतार्थ स्वर्ग में 'रत्नपुर' नामक नगर का निर्माण करवाते हैं। कवि ने इस नगर का विशद वर्णन किया है। यदि स्थूल दृष्टि से देखा जाय तो यह वर्णन निरर्थक और असंगत प्रतीत होगा। किन्तु वास्तविकता यह है कि कवि ने इसके द्वारा अपनी कथा को एक नया मोड़ देकर अपने चरित-नायक की लौकिक पराजय को अलौकिक विजय के रूप में चित्रित किया है। विजित होकर भी रत्नसिंह अमरत्व प्राप्त करता है और स्वर्ग के देवता तक उसका सम्मान करते हैं यही दिखाना कवि को अभीष्ट है, और इसलिए उसने इस नगर वर्णन का आयोजन किया है।

सती-वर्णन के अन्तर्गत रानियों के नख शिख का वर्णन करते समय कवि रीति कालीन भूमि पर उतर आता है। दीपता के प्रसंग में शृ गार का आयोजन देख कर पाठक चकित-विस्मित हो जाता है। किन्तु यहां भी कवि पकड़ में नहीं आता। वीर भूमि राजस्थान मालवा की ललनाएं रणांगण में वीर-गति को प्राप्त अपने पति के साथ सती होने के अवसर को एक पर्व मान कर सोलह शृ गार से सज्जित हो अग्नि

स्थान करती आई है। इसी परंपरा के अनुसार कवि ने सती प्रसंग में शृंगार की अवतारणा की है।

इस प्रकार वचनिका के प्रायः सभी वर्णन सप्रसंग और कथा-क्रम से किसी न किसी प्रकार सम्बद्ध हैं जो वर्णन कथा-विन्यास से तनिक परे है वह भी अपने काव्य सौंदर्य के कारण इतना मार्मिक है कि पाठक उसमें अभिभूत होकर तन्मय हो जाता है—ज्योंही अंत आता है त्यों ही कथा-क्रम फिर जुड़ जाता है और कथा विकासोन्मुख हो जाती है।

वीर-काव्यों में प्रकृति प्रायः उपेक्षित रही है, उसका जो कुछ भी थोड़ा चित्रण मिलता है वह अप्रस्तुत रूप में है और परंपरा युक्त भी। वचनिका में भी यही प्रवृत्ति लक्षित होती है। कवि युद्ध और युद्ध सम्बन्धी वर्णनों में इतना तल्लीन है कि उसे प्रकृति-निरीक्षण के लिए अवकाश ही नहीं। फलतः वचनिका में कहीं भी स्वतंत्र रूप से प्रकृति चित्रण नहीं हुआ है। फिर भी कवि ने ग्रीष्म-ऋतु मेघ घटा बिजली वर्षा धारा नदी-प्रवाह आकाश पर्वत आदि प्रकृति के प्रस्तुत उपमानों द्वारा कहीं-कहीं प्रकृति के सुन्दर दृश्य खण्ड प्रस्तुत किए हैं। इस दृष्टि से ऋतु-वर्णन अत्यंत ही सुन्दर बन पड़ा है।

चरित्र चित्रण

वचनिका में जीवन की विविधता का चित्रण न होकर एक विशिष्ट घटना का वर्णन हुआ है। यह घटना युद्ध की है जिसमें कर्म की गतिशीलता और भावना की तीव्रता तो है किन्तु अन्तर्द्वन्द्व या मनोविश्लेषण की प्रक्रिया नहीं—इसमें वैशिष्ट्य है वैविध्य नहीं।

इसमें पात्र उतने ही हैं जितने कि किसी सेना में सामंत सरदार हो सकते हैं। प्रत्येक पात्र के विषय में कवि ने कुछ न कुछ बताया है कुछ पात्र स्वयं भी बोले हैं। इतना होने पर भी पाठक की दृष्टि रत्नसिंह महाराजा जसवंतसिंह, औरंगजेब व मुराद की चार पात्रों पर टिकती है। ग्रन्थ के शीर्षक और वस्तु विवेचन से सिद्ध है कि इसका नायक रत्नसिंह है। आद्योपांत संपूर्ण घटना चक्र रत्नसिंह को केन्द्र मान कर अग्रसर हुआ है। उसके सहयोगियों की वीरोक्तियाँ और उनके दर्प आदर्श एवं त्याग-भावना की अभिव्यक्ति सभी उसके चरित्रोत्कर्ष का साधन बने हैं। वस्तुतः देखा जाय तो कवि ने किसी एक व्यक्ति विशेष का चारित्रीकरण करने का प्रयास नहीं किया है अपितु रत्नसिंह को आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित करके समस्त क्षत्रिय जाति के चरित्र को सामूहिक रूप से प्र तुत करने का यत्न किया है। संभवतः इस रचना की महती लोकप्रियता का एक कारण यह भी है।

रत्नसिंह

रत्नसिंह 'वचनिका' का नायक है। वह राजकुलोत्पन्न राघव और कर्ण के समान अप्रमत्त वीर, मन-भंजक, सर्व-समर्थ, त्रिरत्न धारणहार सर्वांग सुन्दर पुरुष है।[1] वह दुर्योधन के समान उदात्त-चरित्र, शत्रुओं के लिए अर्जुन के बाण के समान विनाशकारी, भीम के समान बली, षट्-भाषा प्रवीण, गो-ब्राह्मण रक्षक एवं तेजस्वी भीसाराट भूपाल है।[2] इस प्रकार वह धीरोदात्त-नायक के सभी गुणों से विभूषित है।

जसवंतसिंह उसे युद्ध में सम्मिलित होने के लिए बुलावा भेजते हैं। वह 'कालो करो किवाड़' तत्काल उपस्थित होता है। जसवंतसिंह अपने साथी सामन्तों को युद्ध के लिए आह्वान करते हैं तो रत्नसिंह पूरे युद्ध का भार स्वयं झेलने को प्रस्तुत हो जाता है। उसका आदर्श है—

रिण मो रहिमो राज रहेसी
कामं मा कोई न कुरो कहेसी।

इसी आदर्श से प्रेरित होकर वह जसवंतसिंह से कहता है—

'औरंग साहि दिसी आवी इम
जुध करिस्यां कौरव पाण्डव जिम।

इन्हीं शब्दों के साथ वह युद्ध के लिए सक्रिय हो जाता है—

ताम जुहार किमो जम तोसे,
जीते जगि जितस्यां हुवि बोले।
जीवो तिण जसो धरि जावो
जावो जगि मो सथि आवो ॥

संकल्प और कर्म की एकता वीर-चरित्र की विशिष्टता मानी गई है। रत्नसिंह के चरित्र में ये दोनों गुण सम्मिलित रूप में व्यक्त हुए हैं। वीर-गति प्राप्त होने पर दूसरे लोक—स्वर्ग में मिलने के विश्वास के कारण ही क्षत्रिय जाति मरण को एक पर्व के रूप में ग्रहण करती हुई आई है।[3] रत्नसिंह ने यहां अपने इसी आस्तिक विश्वास को हंसते हुए व्यक्त किया है।

रत्नसिंह कुशल सेना-नायक है। वह प्राणों पर खेल जाने में जितना तत्पर है उतना ही अपने साथियों को 'मरण-पाठ' पढ़ाने में निपुण भी। युद्ध उसका प्राण

१—छंद संख्या ४
२—छंद संख्या ७६—८०
३—माय कहै सासू कहे, एक सुणावक काम।
बहू बतैया लुगड़े पूत मरैया नाम ॥ वीर सतसई—सूर्यमल्ल कृत

और वीरत्व उसका बाना है। युद्ध के साथ कीर्ति का प्रश्न है, जिसके लिए वह लंका और कुरुक्षेत्र के पश्चात् उज्जैन के रण-क्षेत्र में तीसरा महायुद्ध रचने के लिए प्रस्तुत है। वह मूछों पर हाथ धर कर तलवार तोलता हुआ अपने साथियों से कहता है—

तिण बेला दातार झूझार राजा रतन मूछां करि घाति बोले तरवार तोले उजेणि खेत भारथ तीरथ धणी रो काम जिणी रो धर्म साथ कीजै लोहां रा मीह वेसा रा धमंका लीजै। जोधां री झाट खडी झाट झडि झपाझडि कीजिजै। पाति-साहां रै साम घाव कीजै। पुरजा-पुरजा हुइ पडीजै। तो वैकुण्ठ चढीजै।

स्वामी धर्म की रक्षा एवं आर्य-गौरव की प्रतिष्ठार्थ उज्जयनी जैसे पवित्र तीर्थ धाम में वीर-गति प्राप्त कर स्वर्गारोहण के संकल्प से निर्मित इस त्रिकोण में प्रतिष्ठित रत्न सिंह का खड्गधारी रूप उसे साक्षात वीर-रसावतार सिद्ध करने में समर्थ है। कवि ने यहां चरित्र के साथ ही जिस चित्र का अंकन किया है, वह चरित्रांकन की एक विशिष्ट शैली कही जा सकती है। रत्नसिंह के मुख से निकला हुआ एक-एक शब्द यहां वीरत्व का पूर्ण विग्रह बन कर अभिव्यक्त हुआ है, जिसकी प्रतिध्वनि पाठक के अंतरतम में जाकर गूंज उठती है।

वीरत्व व्यक्ति की गांठ में बंध कर रहने वाला पारलौकिक गुण नहीं है अपितु वह लौकिक धर्म है। जिसका विस्तार अवसर आने पर कर्म की सीमा तक हो जाता है जिसमें तत्व-चिन्तन का प्रवेश नहीं प्राणों की परवाह नहीं एवं आयत का भय नहीं। इस स्थिति में शौर्य का बाना धैर्य की ढाल, साहस का बल पराक्रम का तेज भुजाओं का प्रताप और मर मिटने का उत्साह ही वीर के प्रकृततत्व होते हैं। इस कसौटी पर कसने पर रत्नसिंह सच्चा वीर सिद्ध होता है।

तीन पहर के भयंकर युद्ध के पश्चात जब शाही सेना की पराजय निश्चित सी हो जाती है और जसवंतसिंह शत्रु-दल में घिर जाते हैं तब योद्धा रिणमल " " राजा राखो। राजा राखिजै आजी रह।" ""मोती पाको। शब्दों से क्षत्रियों को सावधान करते हैं। इन शब्दों को सुनते ही रत्नसिंह आगे आता है और बिना किसी के कहे वीरत्व से प्रेरित होकर—अपने स्वामी के प्राणों की रक्षार्थ स्वयं को जोखिम में डाल कर युद्ध का भार स्वयं ग्रहण कर लेता है—मारथ प भरमार रतनागिर भलियो। जसवंतसिंह युद्ध से विरत हो जाते हैं और रत्नसिंह रणक्षेत्र में उनका स्थान ग्रहण कर लेता है—कुटि मुरडे भलियो जसो पडे रतन भल्लि पाडि। वीरत्व का उज्ज्वल और वास्तविक स्वरूप यही है और यही रत्नसिंह के चरित्र का चरमोत्कर्ष भी।

उदात्त वीर-भावना से प्रेरित होकर मस्तक पर मौड और भुजाओं में आर्य-धर्म के बिरद को धारण करके रत्नसिंह शत्रु-सेना पर टूट पड़ता है।[1] वैकुण्ठवास के विचार से वह अपने शरीर से रूठ जाता है। यथा—

१—छंद संख्या १४८

धन धोम धिमि धार बसण बैकुण्ठ बिचारे।
तजि मोह गहि छोह छोह मोहां जुध लैयण।
ताणि मूछ उसमे आणिए पाण्डव परव्वए।
उल्हसे रोम पीर्उस्स प्रति प्रहे पछाडण पैकरां।
बढो सरीर ऊपरि रतन पूठो सीस पमरुबरां।

यहाँ कवि ने रत्नसिंह के आंतरिक उत्साह और तेजोमय आल्हाद को अत्यंत सजीव और सशक्त अभिव्यक्ति दी है। भाव-चित्रण की यह कला उसकी हृदय-स्पर्शी भव्य प्रतिभा की परिचायक है। अंतर का यही उत्साह वीर में पौरुष का संचार करके उसकी रोमावली में पुलक और भुजाओं में हाथियों को पछाड़ने की शक्ति भर देता है।

चित्रण की विशेषता यह है कि पहले निश्चय जन्म लेता है फिर बैकुण्ठवास का विश्वास पौरुष का संचार करता है और अंत में उस निश्चय की पूर्ति के लिए वीर सक्रिय हो जाता है। चरित्र विकास की यह प्रक्रिया अपने आप के साथ अत्यंत सार्थक और प्रभावपूर्ण बन पड़ी है।

रत्नसिंह दुर्धर्ष योद्धा है। वह प्रचण्ड रूप धारण करके शत्रु–सेना का विपुल संहार करता है और अंत में स्वयं वीर-गति को प्राप्त होता है।

लाख री कोड़ उजेणि माहि
चिढि रतन राजा चढे।"

प्रारंभ से लेकर रत्नसिंह की मृत्यु तक कवि ने इतिहास की सीमा में रह कर रचना की है। किन्तु इसके पश्चात रत्नसिंह के स्वर्गारोहण के काल्पनिक वर्णन में देवताओं द्वारा उसका मान-सम्मान दिखा कर सूर्य-चन्द्र को उसके छत्र के रूप में चित्रित करके उसके-रत्नसिंह-की चारित्रिक उत्कृष्टता एवं वीरत्व को प्रदर्शित किया है। बीसवीं सदी का बुद्धिवादी पाठक इसे अतिशयोक्ति अथवा अतिरंजना भले ही माने किन्तु क्षत्रिय संस्कारों में पले जगा जैसे व्यक्तियों के लिए यह चित्रण अस्वाभाविक नहीं है। इसी अवसर पर जगा ने अपने चरित्र-नायक में सेवक-वत्सलता का भाव दिखा कर उसे और भी उदात्तता-मण्डित कर दिया है। मरणोपरांत जब बैकुण्ठनाथ रत्नसिंह से बैकुण्ठ-वास करने को कहते हैं तब वह अकेला स्वर्गवास का भागी नहीं बनता अपितु वह उनसे अपने सभी वीर-गति प्राप्त साथियों के लिए बैकुण्ठ-वास की व्यवस्था करने को कहता है। यह वीर-चरित्र का चरमोत्कर्ष है जिसे जगा ने सुन्दर ढंग से प्रतिपादित किया है।

युद्ध की एक रसता और कथा बहुलता में जगा ने अपने चरित्र नायक के चरित्रोत्कर्ष को दिखाने का प्रयास किया है। उसने एक भी ऐसा स्थल अपने हाथ से नहीं जाने दिया है जहाँ वह रत्नसिंह की चारित्रिक विशिष्टताओं का निदर्शन कर

क्ता था। छोटे से छोटे अवसर और उक्ति का नियोजन भी उसके चरित्र-विकास का
ाधन बन कर ही आया है। इस विषय में 'वस्तु-विवेचन' के अन्तर्गत प्रकाश डाला
ा चुका है।

महाराजा जसवंतसिंह

जसवंतसिंह का चरित्रांकन करने में कवि को एक कड़ी परीक्षा से गुजरना
ा है।

जसवंतसिंह जोधपुर के महाराजा हैं, उनके समान जानकर कोई नहीं। (राज
ातपे कुण जाणे।) वे मति भाग्य तप और तेज मे हिन्दुओं के सूर्य हैं। (मति भाग
-तेज सुरज हिन्दु आवो।) एवं जोधाओं के छत्र हैं। (तुम सहि जोधां छत्र जोध
ा हम थपे।) एवं बादशाह शाहजहां ने उन्हें सूबा देकर हिन्दू और मुसलमान दोना
ों के योद्धाओं का सेनापति नियुक्त किया है। (तुम सिरधर दुह राह साह सोपी
रे थप्पे।) किन्तु विधि की विडम्बना है कि उन्हें अपने सैनिकों—साथियों को रणक्षेत्र
छोड़ कर युद्ध क्षेत्र से पलायित होना पड़ा है। यह जन पर साधारणतया एक
ंक माना गया है कुछ इतिहासकारों ने भी इस ओर उंगली उठाई है। ऐसी स्थिति
किसी भी कवि के लिए बड़ा कठिन था कि वह जसवंतसिंह को निष्कलंक सिद्ध करके
के चारित्रिक गौरव को अक्षुण्ण बनाये रख सकता। किन्तु खिड़िया ने अपनी वचनिका
अद्भुत कल्पना-शक्ति और सूक्ष्म-बुद्धि कौशल से दूर तक जसवन्तसिंह के चरित्र का
ाव रखने का सफल प्रयास किया है।

जसवन्तसिंह को अकेले दो उद्भट वीर और शक्ति-सम्पन्न शहजादों से लोहा
ा था। शाहजादों बिहुं साजुही एक जसो भण भंग। किन्तु जसवन्तसिंह विचलित
ीं हुए। औरंगजेब की ओर से 'राहि म करि इक तरफ रहि आगे पीछे आव' का
ताव पाकर भी वह दृढ़ निश्चय बने रहे और यह उनके गौरवमय चरित्र का ही तेज
जिससे प्रेरित होकर उन्होंने औरंगजेब से स्पष्ट शब्दों मे कह दिया है भी था भाजी
हमी कहो जण दुइ नेमि।

जसवंतसिंह जन्म-जात वीर हैं। अपने सामने शत्रु सेना को देखकर तुरंत अपने
ंतों की सम्मति से व्यूह रचना कर स्वयं युद्ध के लिए मौल में खड़े हो जाते हैं एवं
ने साथियों से रामायण जैसा विकट युद्ध रच कर कथा-नामा लिखवाने के लिए
त्साहित करते हैं।

> रिण रामायण जिसी रचावां
> करे मरां चंद नाम कहावां।

एक वीर सेनापति के चरित्रोत्कर्ष का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो
ता है।

उपरोक्त आह्वान से प्रेरित होकर 'मरण का सुख' मांगता हुआ रत्नसिंह जसवंतसिंह से युद्ध से विरत होकर प्रभु पद भोग के लिए निवेदन करता है और उनके युद्ध से विरत होने की बात को युक्ति-युक्त ठहराने के लिए दुर्योधन और भी कृष्ण के पलायन के उदाहरण भी प्रस्तुत करता है, किन्तु जसवन्तसिंह अपने युद्ध के निश्चय पर अटल बने रहते हैं। जसवंतसिंह और रत्नसिंह दोनों के चारित्रिक उत्कर्ष को प्रदर्शित करने के लिए कवि ने यह सारा आयोजन किया है जो कथा-वस्तु से जितना जुड़ा हुआ है उतना ही परिस्थिति और पात्रों से भी।

जसवन्तसिंह ने औरंगजेब से वैसा ही युद्ध किया जैसा सूर्य और राहु करते हैं औरंग असी अथाहि सूरज सूरज राहु जिम।

इस प्रकार कवि ने जसवंतसिंह को प्राणों पर खेलता हुआ चित्रित किया है। इतना ही नहीं उसने जसवंतसिंह का उत्कटतम-शौर्य के प्रदर्शन हेतु औरंगजेब को देवता का अवतार तक कह दिया है। यथा—

दइव रा अवतार। जिण आगे जमराणो विमुहा जो दिण तू तीन पोहर रायू के महाराजा जसवंत ही अड़।

जिस दुर्धर्ष योद्धा औरंगजेब के सामने स्वयं यमराज पीठ मोड़ देता है उससे तीन पहर तक लोहा लेना जसवन्तसिंह के तेज पराक्रम और साहस का ही कार्य था। जसवन्तसिंह अंत तक लड़ते रहे। उन्होंने रण-क्षेत्र विवश होकर छोड़ा। वह भी तब जबकि उनके साथी-सामंतों ने उनके घोड़े की लगाम थाम कर उन्हें युद्ध-क्षेत्र से बाहर कर दिया 'भागा अलगि जसराज कालिमा'। और फिर वंश-रक्षा का प्रश्न भी तो उनके सामने था।

स्पष्ट है कि कवि ने पराजित जसवंतसिंह के चारित्रिक पौरुष और क्षात्र आदर्शों का आद्योपान्त स्वाभाविक रूप से निर्वाह किया है और बड़ी निपुणता से उनके नाम पर आने वाले दाग का मार्जन करके उनकी यश-कीर्ति की प्रतिष्ठापना करने का प्रयास किया है।

अन्य-पात्र

कवि की दृष्टि मुख्यतः उपयुक्त दो ही पात्रों के चरित्र पर रही है। उसने प्रतिपक्ष के पात्रों का स्वतंत्र रूप से चरित्रांकन करने का प्रयास नहीं किया है। फिर भी उसने स्थान-स्थान पर उनके वीरोचित गुणों को व्यक्त किया है। मुगलों के वर्णन से उनके जातीय संस्कारों और अंतः प्रकृति का उद्घाटन हुआ है। जसवंतसिंह को भेजे गये फरमान से औरंगजेब की कूटनीतिज्ञता की ओर भी संकेत किया गया है। इस प्रकार कवि ने प्रतिपक्ष के पात्रों को कूँची के मोटे मोटे हाथ मार कर ही चित्रित किया है—सूक्ष्मता उसमें नहीं है। कवि को यह अभीष्ट भी नहीं था और न ही उसको इतना

अवकाश था। प्रति-पक्ष के बल और पराक्रम के वर्णन से भी नायक-पक्ष के चरित्र ही विकसित और स्पष्ट हुए हैं।

युद्ध-भूमि में वीर-गति प्राप्त करने वाले अन्यान्य वीरों के गुणों का भी कवि ने वर्णन किया है जो सामूहिक रूप से क्षत्रिय जाति की चारित्रिक-महत्ता को ही व्यक्त करते हैं।

अलंकार

कवि ने रीतिकालीन अलंकारवादी युग में रचना करके भी अलंकारों का अत्यंत ही संयत और स्वाभाविक प्रयोग किया है। मात्र उक्ति-चमत्कार और वक्रोक्ति विधान कवि का लक्ष्य नहीं है। उसने भावोत्कर्ष और प्रेषणीयता को दृष्टिगत रखते हुए अलंकारों का प्रयोग किया है। जहां कवि भाव-विभोर हो गया है वहां उसने अलंकारों की योजना किए बिना ही सफल काव्य-रचना की है।

वचनिका में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रयोग हुआ है परन्तु ये अलंकार कहीं भी अयत्न प्रसूत नहीं जान पड़ते। कवि ने राजस्थानी चारण कवियों की प्रथा के अनुसार युद्ध व विवाह और षट्-ऋतु एवं सैनिकों के दो रूपक जान बूझ कर खड़े किये हैं पर उनमें भी बेमेल बनावट और अस्वाभाविकता नहीं है। शब्दालंकारों में वृत्त्यानुप्रास छेकानुप्रास अन्त्यानुप्रास श्रुत्यानुप्रास बहुलता से प्रयुक्त हुए हैं– राजस्थानी वयण सगाई अलंकार का तो प्रायः सर्वत्र निर्वाह हुआ है पूरे ग्रन्थ में कठिनता से १०-२० स्थल ऐसे होंगे जहां वयण सगाई का प्रयोग नहीं हुआ हो।

कवि का डिंगल भाषा पर पूरा अधिकार है और उसका शब्द कोष विशाल है। वह अवसरानुकूल शब्दों का मनोवांछित प्रयोग करने में समर्थ है। यही कारण है कि वयण-सगाई जैसे शब्दालंकार का प्रचुर प्रयोग करते भी उसने भाषा के माधुर्य और स्वाभाविक प्रवाह को बनाये रखा है। कवि की वर्ण-योजना और शब्द-चयन की उत्कृष्ट कला ने वचनिका को ध्वनि-काव्य बना दिया है। अस्तु।

शब्दालंकार

१—वयणसगाई—वयण सगाई डिंगल कविता का अपना एक विशिष्ट अलंकार है। *जिसका अर्थ है वर्ण द्वारा स्थापित शब्दों की सगाई या संबंध।* इसमें चरण के प्रथम शब्द के आदिवर्ण का चरण के अंतिम शब्द के आदि में आकर शब्दों में सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।[1] जैसे :—

असपति बांधे भीड़
धारे कुल हिन्दू धरम।

१—प्रो० नरोत्तमदास स्वामी– 'किसन रुकमणी री वेलि' की प्रस्तावना पृ० ६०

मध्य बडाविसि मरहूपियो
रतनागिर राठौड़ ॥

वयण सगाई या वैण-सगाई साधारणतया चरण के प्रथम और अंतिम शब्दों की ही होती है, पर कभी कभी मध्यागत शब्दों की भी होती है। इस दृष्टि से वैण सगाई को दो भेद—(१) साधारण और (२) असाधारण माने गये हैं।

१ साधारण वैण सगाई—जिसमें चरण के प्रथम शब्द की चरण के अंतिम के साथ सगाई या संबंध हो।

२ असाधारण वैण सगाई—(क) चरण के प्रथम शब्द की चरण के उपान्त्य शब्द के साथ अथवा—
(ख) चरण के द्वितीय शब्द की चरण के अंतिम शब्द के साथ सगाई हो।[1]

जमा ने अधिकतर साधारण वैण सगाई का ही प्रयोग किया है पर कहीं-कहीं असाधारण वैण सगाई के उदाहरण भी मिल जाते हैं।

उदाहरण :

साधारण—१ सुणु हाक सान्हा गयो कन्ध सेले
२ विर्दया सखे कुमचो केसासली
३ धुबो वाच्छा फिरा भेला समीरं
४ धुबो सम्म वैहू बली कुम्भमल्ली

असाधारण—१ अरि भम्बाण असि होस
२ राम बडाला बज्जिमो

वैण सगाई कभी एक ही वर्ण द्वारा और कभी दो भिन्न वर्णों के द्वारा स्थापित की जाती है। इस दृष्टि से वैण सगाई के उत्तम मध्यम और अधम (अधिक, सम और न्यून) ये ३ भेद होते हैं—

१ उत्तम या अधिक—जब सगाई उसी वर्ण के द्वारा हो।

२—३ मध्यम या सम और अधम न्यून—जब सगाई उसी वर्ण के द्वारा न होकर दो भिन्न वर्णों के द्वारा हो।

भिन्न स्वरों और वर्ग स्वरों की वैण सगाई मध्यम तथा भिन्न व्यंजनों की सगाई अधम मानी गई है।[2]

आलोच्य रचना में उपरोक्त तीनों प्रकार की वैण सगाई मिलती है पर अधिक नहीं। कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं—

१—वही पृ ९-११
२—प्रो० नरोत्तमदास स्वामी—'क्रिसन रुकमणी री वेली' प्रस्तावना फुटनोट पृ० ११

उत्तम—१ हीर जड़ित छत्र हेम
२ किम म्रांतो किरणाल
३ वर सारी पडि थाक

मध्यम—१ इसा वज्र वस्ताल वस्ता अपारं
२ उरं हाल सारीख चौड़ा प्रकस्ता
३ यों हरि नाम उच्चारियो
जो रहिमाण अलाह।

अधम—१ वेण सुर विश वैठाये।
२ ठाम धर मेछ टमट्टमि।
३ बहे घोला सर बाण।
४ भर्ला फलि सेवा भर्ला सीस दर्स

वैण सगाई को स्थापित करने वाला वर्ण कभी अंतिम शब्द के आदि में आता है, कभी मध्य में और कभी अंत में। इस दृष्टि से भी वैण सगाई के तीन भेद होते हैं—

१ आदिमेल—जब वैण सगाई को स्थापित करने वाला वर्ण अंतिम शब्द के आदि में आवे।

२ मध्यमेल—जब वैण सगाई का स्थापक वर्ण अंतिम शब्द के मध्य म आव।

३ अंतमेल—जब वैण सगाई का स्थापक वर्ण अंतिम शब्द के अंत में आवे।

आलोच्य कृति में आदिमेल का ही अधिक प्रयोग है तथापि कहीं-कहीं मध्यमेल और अन्तमेल वाले चरण भी मिल जाते हैं।

उदाहरण :

आदिमेल—१ कटि सिंघ लिम्ब जंघा कदली
२ चित्त मित्त पवित्त मराल चली।
३ कण्ठ कोकिल वस्त्र श्रृंगार कली
४ मद मत्त मतंग कला उजली

मध्यमेल—१ सुपह मनै पतिसाह
२ हिन्दू तुरक बहुस्सि
३ पड़ै मसरक्का पटा मणपार
४ जाणि बाभर विण्डारै

अंतमेल—१ अम्बर सई बधाइ
२ सही उमंगे सपरिसा
३ सु ह मावे नरि माम

वयण सगाई के पश्चात् दूसरा महत्त्वपूर्ण अलंकार जिसका प्रयोग वचनिका में हुआ है, अनुप्रास है। पूरी रचना में अनुप्रास की अनोखी छटा छाई हुई है, पर कहीं भी ऐसा भान नहीं होता कि कवि ने इस योजना में कसरत की है वे सर्वत्र स्वाभाविक और प्रतिभा प्रसूत हैं। भाषा-अधिकार पर विचार करते समय अनुप्रास के उदाहरण दिये जा चुके हैं—कुछ और उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

अनुप्रास :

१ घण गाजित घण माह घम मपसर्य घुमण।
२ रमे महारिण रूक रम।
३ गी कामी कु मामथा काम गजा सिर काम।
४ भमती सिखि मभे मभर।
५ अपा अोडके अप्प आमा अपारं।
६ राज राजा राजान।

'यमक' का भी कहीं-कहीं प्रयोग हुआ है पर श्लेष के दर्शन [illegible] भी नहीं होते।

यमक

१ करण और आरव करण।
२ वीर मिले वरवीर।
३ बकी मकी मिराजिमी सुर समा विचसुर।
४ सुरपति सुरो सुरछाइण धन सुरा विमण।
५ मरम महिरण मरम मारण सामंई मापरि मामर्दा।

(ख) अर्थालंकार

वचनिका में अर्थालंकार अधिक प्रयुक्त नहीं हुए हैं, [illegible] स्थिति के अनुकूल उपमा उत्प्रेक्षा रूपक [illegible] हुआ है। यथा—

उपमा

१ पहुर्वाह प एत मू परत मार्म।
२ धीर हठी रिण पड़ हुई जिम [illegible]
३ घावै जावै परमार, पमो मघ [illegible]
४ मडे सिर पोग कमन्धन ईम।
मसाणस रौद्र नचौ जिम भीम॥

५ करता जग रिण काम ।
जेत कलीधर जैत जिम ।।
६ ऊंचे ग्रह किस किना म्यू फूल भारा बिधि बडि पत्रा ।

रूपक

१ माया बाहिर प्रेम वैसि पत्री मेघाडम्बर ।
२ बाप्पु मालिन मुख कमल ऊगा ।
३ दल सिरागार गंज पो वी की ।
४ काल्ही रा कमध ।
५ सती रा नामेर ।
६ रूक रहिम भामी ।

सांग रूपक :

१ बलाबोल रिण समन्द माहे अधिविहाय भरां ।
२ कुरसह रवण कुम्भाण सूरा पूरा वाम सही ।
३ हैं वै चढ़ कुसहणि हुई चढ़ तौरण ववकाल ।।

विषम

१ कामे अछुमासी किधी आविखना अधिपट्ट

उत्प्रेक्षा—यह कवि का सर्वाधिक प्रिय चमत्कार है। अनुप्रास और वैण सगाई के पश्चात् यही अलंकार है जिसका कवि ने जी खोल कर प्रयोग किया है। उत्प्रेक्षाओं की योजनाओं में जहाँ कवि ने परंपरागत उपमान अपनाये हैं, वहीं उसने कतिपय अछूते उपमान भी ग्रहण किये हैं। यथा—

१ फिरे कंध मंथा हिरे अभिमानं ।
भरे मारि आखे जिके अभिमानं ।।
२ मयारांक भैभीत सोभंत भारं ।
कमे चाखि माधी निसा अंधकारं ।
३ बसी बिस मे सर सेस्ह फनीस ।
सोहे फिर बंस भिरम्मर सीस ।।
४ रसातल मीर जिहीं वह्निपल ।
कला हुत जांणि कि माधव काल ।।

छंद विचार

जग्गा ने अपनी वचनिका की रचना वीर रसात्मक काव्य पद्धति का अनुकरण करते हुए की है अतः इसमें वीर रस के उपयुक्त छंदों को ही ग्रहण किया गया है। वचनिका में गद्य (वचनिका) और पद्य कुल १६६ अवतरण हैं जिनमें १२ प्रकार के

विभिन्न छंद प्रयुक्त हुए हैं। छंदों की विविधता और परिवर्तनशीलता इस कृति की विशेषता है। छंद वर्णिक भी हैं और मात्रिक भी।

(क) मात्रिक छन्द

१ गाहा-छंद संख्या १,७५ ८५,

गाहा प्राकृत का सुप्रसिद्ध छंद है संस्कृत में इसका नाम आर्या है। वचनिका में प्रयुक्त 'गाहा' तीन प्रकार का है—

१ प्रथम चरण में १२ मात्रा।
द्वितीय चरण में १८ मात्रा।
तृतीय चरण में १२ मात्रा।
चतुर्थ चरण में १५ मात्रा।

छंद संख्या ७५ में उपयुक्त-नियम का निर्वाह हुआ है।

२ प्रथम और तृतीय चरणों मे १२-१२ मात्राएं।
द्वितीय और चतुर्थ चरणों में १५-१५ मात्राएं।

छंद संख्या १ मे इस लक्षण का निर्वाह हुआ है।

३ प्रथम चरण में १४ मात्रा।
तृतीय चरण में १२ मात्रा।
द्वितीय और चतुर्थ चरण में १५-१५ मात्राएं।

यह छंद संख्या ८५ में प्रयुक्त हुआ है। यथा—

अवधारण मरण जग धारा
सामि काम मंत्रिये देहा।
सोभत चित्त निश्चित
आसीसै पुन्न देहा ई॥८५॥

यह गाहा वस्तुत उपयुक्त गाहा संख्या २ ही है। [illegible] प्रथम पद के प्रथम चरण में कभी कभी दो मात्राएं अधिक रखी जाती है [illegible] सूचक होती है। गीतों की इस परिपाटी का पालन [illegible] के छंदों में भी कभी किया जाता है, जैसे कि पृथ्वीराज की [illegible] में। यहां पर भी प्रथम चरण में १४ मात्रा सम्भवतः उसी परिपाटी का [illegible] है।

२. गाहा चूमेल — छंद संख्या २४६

गाहा चूमेल में १५ १५ मात्रा के चार चरण होते हैं और प्रथम एवं [illegible] और तृतीय एवं चतुर्थ चरण में तुक मिलाई जाती है। यथा—

इस पंग होमि बिमाखे भाई
भावे सुरंभिम सामही माई ।
करि मद कोम पुहप बिरता करि
सामि मिलस्य वासी सखि सुन्दरि ॥२५६॥

३ गाहा चौसर—छंद संख्या ४७ ४८, ४५८

'गाहा चौसर' में ११ ११ मात्राओं के चार चरण होते हैं और सभी चरणों में अंत में एक ही शब्द आता है। यथा—

इस विलणापि वेठाने ।
देस बुहे दिसा वेठाने ।
बुहे बाजार मंडा वेठाने ।
सामिस बसो बसा वेठाने । (४७)

४ चिमकसारी—छंद संख्या ५७ से ७५ तक

इसमें १६ १६ मात्राओं के चार चरण होते हैं। यह चौपाई का ही एक प्रकार है। यथा—

कमाहरी मिरमर रिण भाली
चीमसिया जायसि प्रौचाली ।
हरो सपी किया है आमे
चौदि करण चैता पुन जामे ॥२८॥

५. चन्द्रायणो—छंद संख्या ८३

इसके प्रत्येक चरण में ११, १० के विश्राम से २१ मात्राएं होती हैं। ११ मात्रा के अंत में जगण और १ मात्रा के अंत में रगण आता है। यथा—

पेसा बंस सबील दरगाह सम्बरां
सामम्द बम्द हस्तिक धारिख इसरा ।
चौमां प विधि जोध बिराजे क्यारका
परिहां चोपी बम्ब कमम्ब मयाउत मारका ॥८३॥

रेखांकित शब्द 'परिहां' की गणना चरण में नहीं होती। अंतिम चरण में ऐसे शब्द जोड़ देने की राजस्थानी के कवियों में एक परिपाटी रही है।

६ कवित्त—छंद संख्या २६,४७,५३,१११,१३२,१४७ २४३

हिन्दी में इस छन्द का नाम छप्पय है। राजस्थानी में यह कवित्त नाम से प्रसिद्ध है। इसमें रोला तथा उल्लाला छंदों का मिश्रण होता है। यथा—

सुणि जबाब जसराज
तेहि सिताब मद्दा मद।
सूर बगू सारिखा
जिसा गोबरधन प्रभद।
वीर धरा वामेत
तेहि माहस तियारो।
रीधम क्रम उदित्त
जिसा मधुकर कुम्भारो।
जयराज कथा गिरवर जिसा
पूछि जगे मोटो पहां।
पम्पराँ मरी प्रसपत्ति सू
कहीं जाय कासू कहो ॥२३२॥

७ दूहा—छंद संख्या ६ से १७, २५ से ३०, ४६ से ५१, ७६, ८७ से ६०
१२६, १३०,१३४,१४५,२४२,२५२ से २५४,२५० ६१ से २६५।

इसमें विषम चरण मे ११ और सम चरण में ११ मात्राएं रहती है एवं द्वितीय और चतुर्थ चरण मे तुक मिलाई जाती है। यथा—

सम्भि धारा बा समासमा वस सम्भिपूर।
समासमा बम् साकुने भई मंगासा तूर ॥११४॥

८ बड़ा दूहा—छंद संख्या २० से ४६, १२५ से १४३, १४८ से २५

बड़े दूहे में ११ ११ और ११ ११ के चरण होते हैं और प्रथम और चतुर्थ चरण में तुक मिलाई जाती है। यथा—

नरवर सूर निमेस मारव मनि रीठी मरी
मावै आवै मयद्धरा क्रमि मरहट्टवरि जैम ॥१४२॥

(ख) वर्णिक छंद

वचनिका में वर्णिक छंदों का भी प्रयोग हुआ है। इनके वर्णिक छंदों में भी विशेषताएं दृष्टिगोचर होती है—

१ ह्रस्व आ' कार का प्रयोग हुआ है। यथा—
राजा करि हाक जिसी भ्रम रहि
माबाडव बँग मरे पिण माहि

मोतीदाम छंद सं० २२६

रेखांकित वर्ण रा' और मा में ह्रस्व 'अ' का प्रयोग हुआ है।

इम अंग होमि भिमासे आई
आमे सुरपिम सामुही आई ।
करि बहु कोड पुहप बिरखा करि
सामि मिमरा वामी सन्धि सुन्दरि ॥२१५॥

३ गाहा चौसर—छंद संख्या ४७, ४८, २५८

गाहा चौसर में ११ ११ मात्राओं के चार चरण होते हैं और सभी चरणों के अंत में एक ही शब्द आता है। यथा—

दल विमणाणि देखमे ।
देप दुहूं दिसा देखमे ।
दुहूं बाजार मंडा देखमे ।
दामिण जबो जबो देखमे । (४७)

४ सिंधकसरी—छंद संख्या ५० से ७६ तक

इसमें १६ १६ मात्राओं के चार चरण होते हैं। यह चौपाई का ही एक प्रकार है। यथा—

कमाहुरी दिरखर रिख कामी
पीवसिया वांसलि मीबाली ।
कदी कमी किमा थै आगे
बीलि करण थैता सम आमे ॥५८॥

५. चन्द्रायणी—छंद संख्या ८१

इसके प्रत्येक चरण में ११ १० के विश्राम से २१ मात्राएं होती हैं। ११ मात्रा के अंत में जगण और १ मात्रा के अंत में रगण आता है। यथा—

मेता मंड सबीह दरगाह उम्भरां
सामन्त चन्द दरिन्दर आरिस इन्दरा ।
बीलो र विधि जोध सिराने ज्यारका
परिहां वांधी बन्ध अनम्प मथाउव मारका ॥८१॥

रेखांकित शब्द 'परिहां' की गणना चरण में नहीं होगी। अंतिम चरण में ऐसे शब्द जोड़ देने की राजस्थानी के कवियों में एक परिपाटी रही है।

६ कवित्त—छंद संख्या २,६,५०,५६,१११,११२ १४० २५३

हिन्दी में इस छन्द का नाम 'छप्पय' है। राजस्थानी में यह 'कवित्त' नाम से प्रसिद्ध है। इसमें रोला तथा उल्लाला छंदों का मिश्रण होता है। यथा—

सुणि जवाब जसराज
तेडि सिताब महा भड़।
सूर बडू सारिखा
जिसा गोवरधन प्रगड़।
मीर मरा माजेत
तेडि माहेस लिमारो।
पीथम कन्ह हरिसिंघ
जिसा मधुकर सुभ्भारो।
जसराज कथा जिरवर जिसा
पुखि जमै मौटां पहां।
अजमत सब भखपति सू
कही जाय काम् कहां ॥२१२॥

७ दूहा—छंद संख्या ६ से १७, २५ से ३०, ४६ से ५१, ७६ ८७ से ६०
१२५, १३०,१३४,१४५,२४२ २४३ से २४४,२४७ ६१ से ८६५।

इसमें विषम चरण मे १३ और सम चरण में ११ मात्राएं रहती हैं एवं द्वितीय और चतुर्थ चरण में तुक मिलाई जाती है। यथा—

सम्भि मारा था समासमा वस् सम्भिमूर।
समासमा वस सामुले भडे भंगाला तूर ॥११४॥

८ बड़ा दूहा—छंद संख्या ३० से ४६, १३५ से १४३, १४८ से ८२५

बडे दूहे में ११ १३ और १३ ११ के चरण होते हैं और प्रथम और चतुर्थ चरण में तुक मिलाई जाती है। यथा—

नरवर सूर निवेस भारथ मचि ऊठी मडी
माने जाने मपजरा अंग अरहटवाडि जैम ॥१४२॥

(ख) वर्णिक छंद

वचनिका में वर्णिक छंदों का भी प्रयोग हुआ है। इसके वर्णिक छंदों में दो विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं—

१ ह्रस्व 'आ' कार का प्रयोग हुआ है। यथा—

राजा करि हाक डिमी प्रम रीह
मामाजन जैत मरे रिण मांहि

मौतीदाम छंद सं० २६६
रेखांकित वर्णों 'रा' और 'मा' में ह्रस्व 'अ' का प्रयोग हुआ है।

३ (क) एक गुरु वर्ण के स्थान पर दो लघु वर्णों का प्रयोग। यथा—

राम विमरण मांभरणपग्ग'—यह छंद हणूफाल का एक चरण है। गणस की योजना के लिए 'विम' को अर्थात् दो लघु वर्णों को एक गुरु वर्ण के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

(ख) दो लघु वर्णों के स्थान पर एक गुरु वर्ण का प्रयोग। यथा—

हिलोले फौज चढ़ाये ढीक'—छंद मोतीदाम के इस चरण में रेखांकित 'ले' और 'ये' अलग अलग दो लघु वर्णों के स्थान पर प्रयुक्त हुए हैं।

१ हणूफाल—छंद संख्या ४

यह सम वर्णिक छंद है जिसमें सगण जगण और जगण के क्रम से वर्ण होते हैं। इसकी गति तोमर और उजोर छंदों से मिलती है। यथा—

रवरांस भास रतम्म
करवम्म कारण कम्म।
नरनाह यै भुज नीर
महबम्ध ग्यान गहीर।
ससमत्थ सूर सकज्ज
पय दीमरण भांमरण भज्ज।
पिरमाव तारण पत्त
सिरणार देख्ह सत्त ॥४॥

२. मोतीदाम—छंद संख्या २२४ से २४१

इसके प्रत्येक चरण में चार जगण होते हैं। यथा—

लगो वहि वार दुमे वि विलग्ग
पड़े धार हिन्दु मलेछ अथग्ग।
रगतनि नीर निहीं वहिराम्
बजाहति वाणि कि भादव धाम् ॥२१५॥

३ त्रोटक—छंद संख्या ५ से ८, २४५ से २५१

इसके प्रत्येक चरण में चार सगण होते हैं। यथा—

गुरु देव सुमति समाप्सि गुर्ण
सुमपतिस गैम रतम्न अर्ण।
पिउ भानु महेस नरेस पर्र

४ भुजंगी—छंद संख्या १८ से २४

छंद प्रभाकर के अनुसार यह संस्कृत का भुजंगप्रयात छंद है जिसके प्रत्येक चरण में चार यगण रहते हैं। यथा—

गहल्ली हसी पम्मि मीपे गहीर
नदी हैम सी ले भाली भाति नीरं।
कमारं कब्बू चले चूम कामा
बहै बादसा भांति साहब्ब बाला ॥२२॥

वचनिका की भाषा—शैली

वचनिका गद्य-पद्य मय शैली में रचित एक वीर रसात्मक काव्य है। कवि चारण है। उसने अपनी रचना को 'भाति भले खिड़िये जगी रासो रतन रसाल' कह कर रासो नाम से भी अभिहित किया है फलतः इसमें चारणी-काव्य संस्कारों के साथ ही रासो-काव्य परंपराओं की विशेषताओं का भी समाहार हुआ है।

वचनिका वीर-काव्य है-वीर ही उसका अंगीरस है। अतः कवि को युगमत वीर रसात्मक भाषा शैली का ही आश्रय ग्रहण करना पड़ा है। कवि को अपने दिवंगत स्वामी की वीरता तेज पराक्रम और साहस का चित्रण करना ही अभीष्ट है। फलतः उसकी भाषा-शैली में ओज उत्साह, अभिराम वेग आदि गुण सहज ही आ गये हैं। कवि की भावना उदात्त प्रशस्त और एवं वाणी विराट और चमत्कारी है। भावना और अभिव्यञ्जना का यह मणि-कांचन संयोग देखते ही बनता है। कवि ने चाहे गद्य को अपनी अभिव्यक्ति का साधन बनाया हो या पद्य को उसकी भाव-धारा दोनों में नैसर्गिक रूप में अप्रतिहत प्रवाहित हुई है। उसमे कहीं अवरोध नहीं-वह अभीष्ट प्रभाव सृष्टि करने मे समर्थ है। कवि में गद्य और पद्य दोनों में अधिकार पूर्वक रचना करने की अपूर्व क्षमता है।

यद्यपि आलोच्य रचना को 'वचनिका' संज्ञा दी गई है किन्तु इसमें पद्य की तुलना में गद्य बहुत कम प्रयुक्त हुआ है। पासीस-वचनिका (२) वार्ता (१) और वचनिका (६) छोटे बड़े कुल १२ गद्य-खण्ड इसमें पद्यों के बीच बीच में आए हैं। इन्हें देखने से ज्ञात होता है कि अचलदास खीची री वचनिका में प्रयुक्त राजस्थानी गद्य इस काल तक आते-आते अपने विकास की चरम सीमा को पहुंच गया था।

कवि के गद्य में जितनी आलंकारिकता है उतनी ही स्वाभाविकता और प्रवाहमयता भी। अनुप्रास जन्य नाद ध्वनि और कहीं-कहीं वैण-सगाई के योग से यह प्रवाह और भी चंचल हो उठा है। कहीं डिंगल के ऊबड़ खाबड़ सम शब्दों में दौड़ती हुई तो कहीं डिंगल की संस्कृत मिश्रित पदावली मे मंथर गति से प्रवाहित और रस की

भाषा ऐसी अद्भुत ध्वनि उत्पन्न करती है कि पाठक के मन में उत्साह और उमंग की लहर सी उठने लगती है और वह कवि की भाव-भूमि में विचरने लगता है। यही ध्वनि डिंगल-काव्य का प्राण है जो आलोच्य कृति में अपने पूरे तेज और प्रभाव के साथ विद्यमान है। यथा—

फौजां रा भाला। काम्ही रो कलस। सती रा नालेर। साद्गल रा साद्गल। भगवान अमर कोमिया बहादर। बाणां मोलां सरां री मारि लोपि हाथियां रै कुम्भायले लगावरा मचाडां। गज डाम पाडां र पतिसाहां रा खांधा मम्मां बाडां बग्घां भाडां बग्घा वाहस्या। रुक पिपासा पीयस्यां पाइस्यां। नाचर विहंडिस्या विहण्डाइस्यां। रिण मेत रै निसै रंगिये बाणधि मतवाला ज्यं भूमतां बकां हाथियां सूं टल्ला बाइस्यां।'

द्वित वर्णों टकार और डकार शब्दों को प्रयुक्त न करके भी यहां रचयिता ने विरल्य शैली में योद्धाओं के आंतरिक उत्साह-उमंग की वीर भावना को खूबी के साथ व्यक्त कर दिया है। वीर के परिचय में कवि ने उपमाओं की झड़ी लगा दी है किन्तु उनसे कहीं भी भाव अव्यक्त नहीं हुआ है। वे कोरे चमत्कार से परे सक्षम संस्कारों से युक्त वीर के व्यक्तित्व को निरूपित करने में सक्षम हुई हैं।

वीरता और युद्ध का वर्णन करते समय बाहरी उपकरणों साज-सज्जाओं आदि का लम्बा चौड़ा विवरण देने वाले कवि तो मध्य-काल में बहुतेरे मिल जायेंगे पर इन सब के अभाव में 'वीर भावना' को चित्रित करने वाले कवि विरले ही मिलेंगे। वीर को 'काम्ही रो कलस' और 'सती रा नालेर' कह कर कवि ने अपूर्व व्यंजना शक्ति का परिचय दिया है-जिसका अनुकरण डिंगल के समर्थ कवि सूर्यमल तक ने अपनी वीर सतसई में किया है।[1] जिससे उसके समस्त वीर संस्कार मुखर होगए हैं। 'रुक पिपासा पीयस्यां पाइस्यां' 'हाथियां सूं टल्ला बाइस्यां' आदि वीरोक्तियां जहां वीर रस के परिपाक में सहायक हुई हैं वहीं उनसे वर्णन सरस भी होगया है।

बेलिकार कवि पृथ्वीराज डिंगल भाषा के कमनीय स्वरूप के प्रयोक्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं ही जग्गा ने भी अपनी वचनिका में डिंगल भाषा की कठोरता में छिपे सरसता के उत्स को प्रकट करने का-गद्य और पद्य दोनो में-सफल प्रयास किया है। कवि अवसरोपयुक्त भाषा और शैली के प्रयोग में निपुण है। रतनसिंह के दिवंगत होने के उपरान्त दैवी शक्ति से निर्मित 'रतनपुर' का वर्णन करने में कवि ने डिंगल भाषा के कमनीय स्वरूप को ग्रहण किया है। यथा—

1—पडकी महली री कलस बलती री नालेर।
एकल भूपो टेकलो भाण हिन्दू धज मेर॥
—वीर सतसई

'नव साथ साविन मास् विरास भति बजा रहिया छै। बारह घण मु हुवा माथे छिड़काउ करे छै। तीन प्रकार रो पवन बाजे छै। सीतमन्द सुगन्ध अनेक परिमल भोमा बाई सहिर नै छै। मु हुवा माथे माबाले रम्भा पातर नट नटिका संगीत भूमि करि करि दिखावे छै। ज्यां रा मसूक हाथ पाव कढि बड। सोलह सिंगार किया। प्रेम का मद। रेनपुष्प। रूप कि मगज। काम की कली। मन मथ बीज। सुख की सिलाव। विरह की बीज। जैसी उरवसी वैसी अपछर मु हुवा आगे हाव भाव कटाछो बेई बेई निरत करे छै।'

इस मान्यत कवि ने वर्णनात्मक शैली का ही अनुकरण किया है किन्तु वर्णनों में चित्रात्मकता उसका सराहनीय गुण है। जिससे वर्णन कोरा वाक्-चातुर्य अथवा इतिवृत्त बनने से बच गया है। कवि ने वचनिका-शैली में मात्र-वर्णन नहीं किया है वरन् उनमें कहीं संवादों की योजना करके अद्भुत कौशल का परिचय दिया है। इस प्रकार के संवाद पात्रों की वीर-भावना व्यक्त करने के साथ ही युद्ध के लिए वातावरण निर्माण में सहायक हुए हैं। यथा—

'तिणि वेला तातार कू मार राजा रतन मु छां कर घालि बोले। एक बार तोमे। – – –––––– ––जमैखि वैव मारा तीरम धणी रो काम सभी रो परम साम कीजे। सीहां रा मोह सेलां रा बर्मका कीजे। बाकर री खाट कढि झपट झडि अभ्याहुति दीजिये। पातिसाहां री मजबका झंडा चौपंडा मारि ठेलिजे। पातिसाहां रै सब पाव कीजै। पुरजा पुरजा हुई पडीजे। तो वैकुण्ठ चडीजे। क्यूं बारहठ बसराज? हां महाराज! महाराज रा मनोरथ श्री महाराज पूरे। पतिसाहि उबारे। महाराज रा मु हुवा आगे लडां। टूक टूक हुई पडां।

यहां ऐसा लगता है जैसे एक वीर सेनानायक अपनी मूं छों पर बल देता हुआ नंगी तलवार लिए वीरता की प्रतिमूर्ति बना हमारे सामने खड़ा अपने सैनिकों को युद्ध के लिए प्रेरित कर रहा है। कवि की यह चित्रात्मक-व्यंजना अनूठी है और निश्चित ही उसे बड़ा कवि' सिद्ध करने वाली है। अंतिम दो पंक्तियां योद्धाओं के चारित्रिक-वैशिष्ट्य को प्रकट करने के साथ ही भावी युद्ध की भीषणता की ओर भी संकेत करती है। गिने-चुने शब्दों में कवि का यह लाघव प्रशंसनीय है।

वचनिकाओं-गद्य-में अन्यत्र भी संवादात्मक-शैली ग्रहण की गई है। परन्तु संवादों में पात्रों का उत्तर-प्रत्युत्तर बहुत कम हुआ है। एक पात्र की बात पूरी होने पर दूसरा बोल उठता है और यही क्रम आगे जारी रहता है। इस बात को दिखाने के लिए कवि को कहीं कहीं स्वयं भी बोलना पड़ा है। यथा- इतरा माहे बोलियो रासो मु मर। दूसरो मधुकर। वर्णन के बीच बीच में संवादों की योजना से इसमें एक प्रकार की नाटकीयता आगई है। इससे पाठक ऊबता नहीं अपितु एक नवीनता का अनुभव करता है जो आगे आने वाले विषय के प्रति उसमें रुचि उत्पन्न कर देती है।

जगा मूलतः कवि है। वचनिका-शैली में रचित उसके गद्य में पद्य का सा सौंदर्य है जो अपने पूरे प्रभाव निखार और मार्दव के साथ प्रकट हुआ है। उसका गद्य प्रवाह पूर्ण रम्य और प्रेषणीय है। यथा—

वरखा रित वरती सरद रित वहुणी। रिण समन्द माहै सूर कमल विकसि विराजमान हुआ। चन्द्रा जैही चन्द्रवदनी अपछरा सोलह कला सूधा नेह सम्पूर्ण उदित हुई। जैसी जैसी आसोज की पूनिम सरद रित जैसी उजली। फौजां ऊपरां ऊजली भाला रा झल्लार मस भाट करि जगाजोति लागी। जाणे बरफ रा टूक हेमाचल पहाड़ माथै विराजमान हुआ। हेमन्त रित लागी। सिसिर रित लागी। रक रहिस लागी। काइरांनू ठण्डि लागी। हाथ पग धूजै धड धड उर रात हाड़ गोडा खड खड।

यह अवतरण एक सफल गद्य काव्य की सभी विशेषताओं से परिपूर्ण है। तन्मय भावुकता कोमल कल्पना ललित भाषा और आह्लादकारी सजीव शैली सभी का यहां सुन्दर सामंजस्य द्रष्टव्य है। ऋतुवर्णन की परंपरा हमारे यहां नई नहीं- संस्कृत कवियों ने भी इसे अपनाया है और मध्य कालीन भक्त एवं रीति-कवियों ने भी इसे ग्रहण किया है,किन्तु अप्रस्तुत का प्रस्तुत के साथ उसका जैसा घनिष्ट संबन्ध निर्वाह वर्ण्य विषय के साथ उसका जैसा अनूठा संयोजन चार-चार कवियों में ही मिले तो मिले। रण समुद्र में सूर-वीर रूपी कमल के विकसित रूप को चित्रित करने के साथ सोलह शृ गारमयी चन्द्रवदनी अप्सरा का उदय दिखा कर कवि ने न केवल उत्तम काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है अपितु वीर रस्य की काव्य-रूढि का निर्वाह करते हुए संध्या समय कमल के संकुचित होने के साथ ही वीर गति प्राप्त योद्धा के अप्सरा द्वारा वरण किये जाने का मार्मिक संकेत भी कर दिया है। रक रहिस लागी (अर्थात तलवारों के प्रहारों की आंधी चलने लगी) वाक्य कवि की भाषागत समाहार शक्ति का अच्छा नमूना पेश करता है। आगे काइरां नू ठण्डि लागी कह कर कवि ने वर्णन को विषय से संबद्ध कर पूर्वापर का संबन्ध जोड़ दिया है। अंत के दोनों वाक्य डिंगल के साधारण से साधारण शब्दों के ध्वन्यात्मक गुण को प्रकट करते हैं।

गद्य लिखते समय प्रायः वचनिका की तुकांत गद्य-शैली ही अपनाई गई है किन्तु तुक के प्रति कवि का दुराग्रह कहीं नहीं है। उसने भाव के मूल्य पर अंत्यानुप्रास लिप्सा स्वीकार नहीं की है। गद्य-खण्डों में सर्वत्र तुक-निर्वाह नहीं है बात को आगे बढ़ाने के लिए भी कवि ने तुक भंग किया है। वर्णन करते करते जहां कवि अत्यधिक *भाव विह्वल हो उठा है वहां उसने तुक का मोह एक दम त्याग दिया है और उसने* काव्य की स्वाभाविक भाव भूमि पर उतर कर रचना की है। ऐसे स्थलों का आस्वाद रमणीय है। इसके लिए बरसात-ऋतु वर्णन वाला ऊपर उद्धृत उदाहरण द्रष्टव्य है। इसमें कवि ने तुक का ताना बाना तोड़ कर भावों की स्वाभाविक अभिव्यंजना की है। वचनिकाओं में कहीं कहीं साधारण गद्य भी प्रयुक्त हुआ है। यथा—

महाराज जिसाह रै पायम मंगल समत सम्माहणी कीजै । पिता भी महामरण री पायम । एक वार सू रां पूरे सबळाउणिय बिभिजां रा बडा राम मांहे बडा हुहा पधारी । ज्यां सूरां पूरां रा चाकरां रा केस वखाणाह ने ऊभा हुवै ।

ऐसे उदाहरण अपवाद स्वरूप ही हैं अन्यथा सर्वत्र नाद-गुण युक्त प्रवाहमय तुकांत गद्य की मनोरमी छटा छिटकी हुई है । कवि की एक बड़ी विशेषता यह है कि उसने तुक मिलाने के लिए कहीं भी वाक्य-विन्यास के साधारण व्याकरण-नियम को भंग नहीं किया है । यही कारण है कि 'वचनिकाओं' में दो-दो शब्दों तक के वाक्य प्रयुक्त हुए हैं ।

वचनिका-शैली अर्थात् गद्य-शैली का प्रयोग कवि ने प्रायः कथा-क्रम को आगे बढ़ाने अथवा कही गई बात का तारतम्य जोड़ने के लिए किया है । कहा जा सकता है कि आलोच्य 'रचना' का गद्य काव्यत्व की दृष्टि से जितना सरल सरस और मार्मिक है उतना ही व्याकरण की दृष्टि से प्रौढ़ और शुद्ध भी ।

गद्य में हमें जिस शैली कौशल के दर्शन होते हैं वह पद्य में आकर अपने चरम उत्कर्ष को पहुँच गया है । जैसा कि कहा जा चुका है कि 'वचनिका' एक वीर-काव्य है और वीरत्व ही उसका प्रतिपाद्य है । कवि ने अपने प्रतिपाद्य की प्रतिष्ठा हेतु सर्व प्रथम उसके अनुकूल वातावरण की सृष्टि की है । यह अत्यन्त आवश्यक भी है; क्योंकि केवल वीर रस का नाम लेने से ही सहानुभूति नहीं हो जाती, वीर रस का वातावरण उपस्थित किये जाने पर ही रस का सम्यक आस्वादन किया जा सकता है ।[1]

विषयानुकूल वातावरण के निर्माण के लिए कवि प्रारंभ से ही सचेष्ट रहा है । अपने चरित्र नायक की वीर-वंश परंपरा का संकेत करते हुए उसने उसके वीर संस्कारों का ही स्मरण किया है । प्रारंभ में ही रतनसिंह को 'रजराज सिंघाळ वाजल वर्णा' और 'रहरोण माण रतन कल्याण तारण तणा' से संबोधित कर वीरत्व को ग्रंथ की टेक के रूप में स्थिर कर दिया है । तदुपरांत वीरता मिश्र हुई साहिजादा और 'साहिजादा वीर' द्वारा परस्पर विरोधी और संघर्षापन्न स्थिति का संकेत कर 'वडी हाकिमी मातरा हू ति ज्यारां सिरां साहिब वस्तां छण्ण वारां' से जसवंतसिंह का ससैन्य प्रस्थान दिखा कर भावी युद्ध की सूचना दे दी गई है । सेना के प्रस्थान का चित्र कवि की उदात्त भाषा-शैली का प्रतीक है—

चहुंवी दसी चल्लि भीपे चहौरं
भरी हेम पी मैं चाली चालि मीरं ।
ज्यारे कठ्ठे चले घूम काला
मदे वावला जाणि मातंग वाला ॥

१—डा॰ कन्हैयालाल सहल-वीर सतसई की भूमिका पृ॰ १०१

यहां कवि की बिम्बग्राहिणी प्रतिभा ने जो चित्र अंकित किया है वह इस भाव में इतना पूर्ण प्रभावशाली और व्यंजनामय है कि पाठक के मानस-चक्षुओं के सामने प्रबल्य उत्साह और वेग के साथ प्रस्थान करती हुई विशाल वाहिनी का सजिव चलचित्र उपस्थित हो जाता है। प्रथम पंक्ति के प्रथम शब्द से अंतिम पंक्ति के अंतिम शब्द तक आते आते ऐसा लगता है कि मरमाते सैनिकों की कई पंक्तियां आंखों के आगे होकर निकल गई हैं किन्तु अभी सेना का अंतिम छोर नहीं आया है। अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत को अभिव्यंजित करने की प्रणाली काव्य में बहुप्रयुक्त है, किन्तु प्रस्तुत और अप्रस्तुत का ऐसा गुण धर्म और ध्वनि-साम्य अन्यत्र मिलना दुष्कर है। नदी हेम की ले वाली वाणी नीरं से वेगवती पहाड़ी नदी की भांति ध्वनि से प्रस्थान करती हुई सेना का ही बस चित्र सामने नहीं आता अपितु प्रत्य वर्णों की धड़धड़ाहट हाथी घोड़ों की भीड़ चिंघाड़ और सैनिकों की पद चाप भी प्रतिध्वनित होती है। कवि की यह बिम्ब विधायनी-शैली सीमित शब्दों में अपूर्व अभिव्यंजना-कौशल का प्रतीक है। इसी प्रकार अंतिम दो पंक्तियां भी कवि की चित्रात्मक सृजना की प्रतीक है। यहां काले ऊंटों की सघन पंक्तियों की मात्रमास के घटा टोप बादलों के साथ उत्प्रेक्षा अत्यन्त ही सार्थक बन पड़ी है।

कवि के काव्य चातुर्य का एक प्रमाण यह भी है कि उसने पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों में समान रूप से वीरता और उत्साह का संचार दिखाया है। एक ओर यहां उसने नायक-पक्ष के क्षत्रिय योद्धाओं को महाभारत के से विकट युद्ध के कर्णधारों के रूप में चित्रित किया है—

> छत्रे वंस छत्तीस हिन्दू समत्थं
> करेवा महासूर भारत्थ कत्थं।

वहीं दूसरी ओर प्रतिपक्षीय यवन सैनिकों को काल के रूप में उपस्थित किया है।

> बलट्ठ घुमट्ठ इठामां बंबालं
> चरुल्ला हसा कालिमा काल चालं।

यदि क्षत्रिय अपने तेज के प्रताप से तलवारें तोड़ने का सामर्थ्य रखते हैं—

> तरवार ज्यां तेज रा ताप तूटै।'

तो यवन भी बल और वीर्य में उनसे किसी प्रकार कम नहीं—उनको भुजाओं में भी उन्मत्त गजों के दांत तोड़ देने वाला बल और मुक्की में सिंहों का वध करने की क्षमता है—

> मरोड़े गजां दंत तोड़े मरद्द
> रहै जिका सिंघ मुक्की रद्द।

प्रतिपक्ष के बल और वीर्य का यह वर्णन जहाँ और रस के परिपाक की दृष्टि से उचित है वहीं मूल कथा के अनुकूल भी है। प्रतिपक्ष की दुर्धर्षता और विकटता के प्रत्यक्ष हो जाने से नायक-पक्ष की पराजय का औचित्य सिद्ध हो गया है। यही कारण है कि पराजित हो जाने पर भी उसकी उच्चाशयता अक्षुण्ण बनी रही है।

गद्य में जिस संवाद शैली का प्रतिपादन किया गया है उसका पद्य में भी पूर्ण कौशल के साथ निर्वाह हुआ है।

औरंगजेब ने जसवंतसिंह को फरमान भेज कर कहा है—

राड़ म करि इक तरफ रहि
आगे पीछ आव।

जसवंतसिंह का उत्तर है—

मो मा म्हारो मसिहुमो
कहो बाण हुवे केम।

इसके बाद जसवंतसिंह भावी युद्ध के विषय में अपने सामंतों की सम्मति चाहते हैं—

उम्मरां मरो मसलति म
कहो जाय अंसू कहां॥

उत्तर मिलता है—

पणि जितरो कुण जाणै
मही बरसत खग्गेज
पणि पूरिब हिंदुआणै।

संवाद की दृष्टि से एक उदाहरण और द्रष्टव्य है—

रिण धमाहण जिसो रचावां
सबै मर्दां चंद नाम सिखावां।
जसवत प्रेम ओलियो ज्याप
तण माहेस मरण की त्यारी॥
ओबो मरी मरणा दिन औछो
दस सिरदार बंध जी दी दी।
दे सीखो पतिसाह सूम दस।
सबची साज मरण अमिलख्यम्॥

इस प्रकार के संवादों से जहाँ वर्णन कोरे इतिवृत्त बनने से बच गये हैं वहाँ इनसे पात्रों के भावों की अभिव्यक्ति भी हुई है। संवादों की योजना में कवि ने अपनी सूक्ष्म बुद्धि का परिचय दिया है।

कवि ने वीर-वर्णन में वीरों का केवल बाह्य चित्रण ही प्रस्तुत नहीं किया है अपितु उनकी अंतः प्रकृति का भी सम्यक् उद्घाटन किया है। यथा—

रिण मो रहिमां राज रहेसी
कर्मां वां कोइ न बुरी कहेसी।

×   ×   ×

ठाम ठाम सुहार किमो बग तोले
बीबै मति मिसल्यां हसि बोले।
बीबै तके मना परि आवी
मावै अवि मो आवै भावौ॥

रतनसिंह के इन उद्गारों में उसके समस्त संस्कार मुखर होकर प्रकट हुए हैं। जगा ने केवल अपने चरित-नायक की अंतः प्रकृति का उद्घाटन करके ही अपने कार्य की इति श्री नहीं मानली है अपितु उसने स्थान-स्थान पर अन्यान्य क्षत्रिय वीरों की मनोभावनाओं का भी अभिव्यक्ति की है। उसकी यह अभिव्यक्ति कितनी सबल सटीक और व्यंजना पूर्ण है—

न रख्या न मारे महाजुध माया
करे काम छोटी किसी टूक काया॥

कवि की वर्णन पटुता की ओर पहले इंगित किया जा चुका है। स्थूल कथा वस्तु के अभाव में कवि की प्रतिभा वर्णनों में ही उभरी है। वचनिका में इतने अधिक वर्णन आये हैं कि वे किसी भी कवि के काव्य-कौशल की कसौटी बन सकते हैं, किन्तु जगा ने अपनी कल्पना शक्ति और अद्भुत अभिव्यंजना कौशल से इन विविध वर्णनों से अपने काव्य को और भी मनोहारी बना दिया है। कवि की चित्र-विधायनी शैली ने जिन चित्रों की सृजना की है वे चारणी साहित्य में अपूर्व हैं। यथा—

ममारंक चीव जिके रोम पूरा
पर वे बार वीभा हिले बाट पूरा।
प्रलम्ब मुखी चक्ख चक्खी परक्खी
मुखां अम्म पैहा ससी सम्मसक्खी॥

यह वर्णन जहां मुगलों का रेखा-चित्र प्रस्तुत करता है वहीं उनके आंतरिक संस्कारों और प्रकृति पर भी प्रकाश डालता है।

रण-क्षेत्र में रतनसिंह के धराशायी होने पर कवि ने अपनी समर्थ लेखनी से जो चित्र अंकित किया है वह चित्र-विधान की सीमा कहा जा सकता है। यथा—

'पड़ै जिण से सर सेग्ह सबीस
सोहे फिर अंत निरम्मर सीस।'

(अर्थात् रत्नसिंह के शरीर पर तीन सौ बाण तथा पच्चीस भाले लगे हैं, वे ऐसे शोभित हो रहे हैं कि मानों पर्वत शिखर पर बांस उगे हों।)

कवि ने यहां रत्नसिंह की विशाल काया के लिए सम्पूर्ण पर्वत को उपमान न बना कर केवल पर्वत-शिखर को उपमान के रूप में प्रस्तुत किया है। बाणों और भालों के लिए बांसों की उपमा भी एक दम स्वाभाविक है—भालों के दण्ड तो बांसों के हैं ही बाण बांसों की छोटी-छोटी शाखाओं के रूप में ग्रहण किये जा सकते हैं, बाण बांसों से नीचे हैं, बांस की शाखा भी नीचे से ही फूटती है। कवि के ऐसे ही वर्णनों से अतिशयोक्तियां भी छिप गई हैं।

पड़े बाज गजराज
राव रावत नरेसुर।
पड़े खान उमराव
मुग्गल भूप मीरम्बर।
पड़े सजन्ध धड़ धजा
इसा दीसे भणिहारे।
जवारी जिण भाणि
वालि बाखर बिणजारे।

(अर्थात्–रण-क्षेत्र में राव रावत नरेश्वर हाथी और घोड़े गिर पड़े हैं। खान उमराव और पूरे मुग्गल गिर पड़े हैं—सजे हुए हाथी और घोड़ों के धड़ गिर पड़े हैं। वे सब ऐसे लग रहे हैं मानों किसी बनजारे ने अपनी बाखर छितराई हो।)

रण-क्षेत्र में इधर उधर बिखरे हुए वीरों के शवों और हाथी घोड़ों के पिण्डों को बनजारे की छितरी हुई बाखर के रूप में चित्रित करना जग्गा की प्रतिभा का ही काम था। यह चित्र जितना अर्थ पूर्ण है उतना ही परिस्थिति के अनुकूल भी।

कवि ने जिस कौशल के साथ स्थिर चित्रों का निर्माण किया है, उतने ही कौशल से कतिपय सुन्दर गति-चित्र भी प्रस्तुत किये हैं। यथा—

कटकां भिड़ै हुइ कुन
घड़ घड़ अन्धाधम हुई।
हुइ मार धर हुइ है धरा
भड़िया पौरस पूर॥
गइ छींह हिलै गहीर
पाइक घोड़क पड़तलां।
भिलता फिर भाली महण

नगाड़ों की गड़ गड़ाहट से उत्साहित वीरों के घोड़ों पर चढ़ने की क्रिया को जैसे यहां शब्दों में बांध दिया गया है। रणातुर उत्तेजित सैन्य समूह की प्रस्थान-गति को भी सौ नदियों के भर-जोर की गति के समान बतला कर कवि ने एक मनोरम गति-चित्र उपस्थित कर दिया है।

रण-क्षेत्र में वीर-गति प्राप्त वीरों के अप्सराओं द्वारा वरण किए जाने की गति को मरहट पक्षी की अप्रस्तुत योजना से चित्रित कर कवि ने अपनी सूक्ष्म चित्रण-कला का परिचय दिया है। यथा—

नरवर सूर निगेम मारण मचि रौती मरी
मावै जावै अपछरा जमि मरहट चलि जेम ॥

यहां अप्रस्तुत रूप से युद्ध की त्वरा की नितांत ही मार्मिक अभिव्यंजना हुई है।

कहीं कहीं कवि ने वर्ण्य-वस्तु का समग्र चित्रण न करके संकेत भर कर दिये हैं। यथा—

हाथ मड मोगड पडिभा राजा पारवती
राजा ऊभी रत्न सी पाबे तरां पहाड़ ।

इन पंक्तियों में कवि ने खेत रहने वाले समस्त योद्धाओं का वर्णन न करके रत्नसिंह को युद्ध विहीन पवत कह कर संकेत भर कर दिया है। यह संकेत इतना गहरा स्पष्ट और व्यंजना पूर्ण है कि इससे पाठक के सामने सम्पूर्ण युद्ध का चित्र उपस्थित हो जाता है।

हाथियों और घोड़ों के वर्णनों से यद्यपि कथा-प्रवाह में विराम आया है, तथापि शुद्ध काव्य की दृष्टि से इसका सौंदर्य प्रशंसनीय है। कवि की भाषा शैली का चमत्कार निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये—

कपोल् चवा गजा घोल् सिन्दूर कैसे
शोभै इन्द्रबाल्न जैसा प्रकैसे ।
तिथां माह ऊभी बणी रेख तासं
पर्व उप्परे जाणि फूली पलासं ॥

नवीन उपमाओं से परिपुष्ट प्रस्तुत और अप्रस्तुत का उत्प्रेक्षामय यह संश्लिष्ट चित्र अत्यंत ही भव्य और हृदयग्राही बन पड़ा है। सिन्दूर-चर्चित गज-गण्डस्थलों के लिए कपोल शब्द का उपयोग भी नितांत ही मार्मिक है। गज भाल पर अंकित लाल रेखा की पर्वत पर फूले पलाश से उत्प्रेक्षा प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों की झांकी प्रस्तुत करने में समर्थ है।

इस प्रकार कवि ने जिस वर्णनात्मक-शैली को अपनाया है उसमें वह आद्यन्त सफल रहा है।

उक्त की शैली की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि वह अवसर के अनुसार द्रुत और विलम्बित हुई है। रचना के आरम्भ में हमें जिस धाराप्रवाही एवं द्रुत शैली के दर्शन होते हैं वह युद्ध-वर्णन में एक उफान सा धारण करती हुई रतनसिंह की मृत्यु के विवरण में भाराक्रांत होकर विलम्बित होगई है। वहां तो किनारे तोड़ कर बहने वाली वह है द्रुत-शैली बहती हुई ध्वनि सोने लहीरें। नदी हैम थी में वाली वारिए मीरें और वहां वह भाराक्रांत शोकमय स्वर-संयोजन 'मात रो कोट उब्भेगि सदि पिडि उल्गराज पडे अथवा 'सिंधि वैसा राजा रैण साहि रा मण्डम वृणि विलिए किया। तरां तरां सु डाम दिया। नरेसें बसाई। समर वैह पाई।

'वचनिका' की भाषा 'डिंगल' है। कवि डिंगल भाषा का पंडित है। भाषा के प्रयोग में उपयुक्त शब्दावली नाद-सौंदर्य चमत्कार आदि का उसने पूरा ध्यान रखा है। भाषा में बेमेल सजावट और कृत्रिमता का सर्वथा अभाव है। स्वाभाविकता और भाव-व्यंजकता उसके गुण हैं। काव्य का मुख्य विषय 'युद्ध' होने के कारण कवि ने अपनी भाषा को बल उत्साह और तेज समन्वित बनाया है।

कवि ने शब्द चयन में बड़ी सावधानी से काम लिया है। शब्द अपने भावात्मिक अर्थ को प्रकट करने के साथ ही भाव व्यंजना में भी पूर्ण समर्थ हैं। शब्दों की ध्वनि से ही भाव स्पष्ट हो जाते हैं। यथा—

घमै धौम विधि धार
बसण वैकुण्ठ विचारे।
गमै मौह चढि लोह
लोह वाहो वुध नेमरण।
सामि मु ख ऊजमै
वाहि पाण्डव परज्जरण।
ऊनहुवै रौम परिसि प्रति
प्रहे पत्रारण नैचरा।
चढी सरीर ऊपरि रतन
गुढी सीम पक्खरां।

वीर रस की रचना होते हुए भी वचनिका में संयुक्ताक्षर शैली का प्रयोग बहुत कम हुआ है।[1] संयुक्ताक्षर शब्दावली और शब्दों को बिना तोड़े मरोड़े हुए भी कवि वीर रस के प्रतिपादन में सफल हुआ है। यथा—

सर्मा चढि वार हुवै वि वि वग्र
— ार हिन्दु भमेच्छ अवग्र।

रमंतसि मीर मिहीं सहिरास
अल्लाहमि आखि कि माहब आस ।।

यहाँ अंत की दो पंक्तियों में शब्दों के ध्वन्यात्मक-गुण से वर्ण्य विषय की अभीष्ट ध्वनि मुखर होकर स्वतः अभिव्यक्त होगई है ।

कवि ने कहीं भी 'ट' कार ड कार आदि रोमहर्षक वर्णों का अस्वाभाविक और कृत्रिमरूप में प्रयोग नहीं किया है । दो-एक स्थलों पर ऐसा आयोजन किया भी है तो वह वातावरण के अनुरूप चित्रण के लिए अथवा वांछित ध्वन्यात्मक गुण लाने के लिए ही हुआ है । कवि ने अपनी भाषा में नाद ध्वनि का संचार करने के उद्देश्य से छंद के चरण के प्रत्येक शब्द का आरंभ प्रायः समान वर्ण से किया है ।[1] यथा—

क गुणपति गुणे गहीर
ख रिण मो रहियां राव रहेसी
ग बजाया बई बिर बीरधीवीर
घ भरण भामै भडिमास
ङ० रास रमण रिण रूक
च मास मलीक मस्सकर,

इसी प्रकार कवि ने अपनी शब्दावली में संगीतात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए समान शब्द-खण्डों की आवृत्ति भी की है ।[2] यथा—

क मारण मरण करण रण मामो
ख करण मरण पड़ काम

इतना सब कुछ करने पर भी उसने कहीं भी अशक्त और अपरत शब्दों की भरती नहीं की है ।

वचनिका की भाषा की यह विशेषता है कि उसमें एक ही शब्द के दसियों पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं । अकेले मुसलमान शब्द के लिए २० पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं । यथा-असुरायण मिलछ, मुसलिम खान पठाण आसुरियाण मुगलाण जवन तुरकाण मीया मलेछ मेछ मुगल मुसलमान मेछाण सवर रीठ रीठाण सक रीठायण ।

इसी प्रकार हाथी घोड़े तलवार आकाश आदि के लिए भी अनेक पर्यायवाची शब्द आये हैं ।

---

१ डा० टैसीटोरी-'वचनिका' रा० रतनसिंह महेसदासोतरी की भूमिका पृ० ४
२ वही पृ० ४

भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न है इसके लिए एक ही उदाहरण यथेष्ट होगा—

बनिता मुख पूनिम चंद बणी
प्रिय मूह बणी प्रिय रूप मणी।
कण्ठ कोकिल रण्ठ मनोहरणी
मद माकर मत्तक कमा उजली ॥

अरबी फ़ारसी के शब्द यथेष्ट संख्या में प्रयुक्त हुए हैं किन्तु वे सर्वत्र राजस्थानी रूप ग्रहण किये हुए हैं। कवि ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का भी प्रयोग किया है किन्तु उसकी रचना में तद्भव शब्द ही अधिक मिलते हैं।

भाव–व्यंजना

✓वचनिका एक भाव प्रधान वीर रसात्मक काव्य है। स्वल्प कथा तत्व के अभाव में कवि की भाव प्रवणता ही उसके काव्य-प्रणयन का आधार बनी है। कवि ने अपने आश्रयदाता महाराजा रतनसिंह के निःस्वार्थ त्याग और बलिदान पूर्ण वीरत्व को प्रतिपादित करते हुए क्षात्र धर्म और आर्य-गौरव की भाव-मयी अभिव्यंजना की है।

यथा स्वयं वीर-क्षत्रिय था उसने अपनी रचना में क्षत्रिय जाति के आदर्शों विश्वासों और संस्कारों का अत्यंत ही मार्मिक चित्रण किया है जिससे इसमें वीर-रस की उद्दाम-धारा फूट पड़ी है।

यश और निष्कलंक-कीर्ति वीर-क्षत्रिय की थाती है जिसे वह विकट युद्ध लड़ कर प्राणोत्सर्ग द्वारा अर्जित करने के लिए सदैव आतुर रहता है—

'रिण रामायण जिमी रचावां
गढ़ें मढ़ें चंद नाम लिखावां।

अपने नाम को चन्द्रमा पर अंकित करने की आकांक्षा से प्रेरित वीर यह भी चाहेगा कि जग उसे बुरा न कहे—

'रिण भी रहिया राम रहेली
कर्मधा कोई न बुरी कहेली।

हार जीत हरि के हाथ है अतः प्रतिद्वन्द्वी से भिड़ जाना ही श्रेयस्कर है—

'हार जीत आर्तो हरि हाथै
भिड़ै मतिमाहि सरिस हू भाथै।

वीर 'सत्य' पर है और निर्णय हरि के हाथ है—यही विश्वास उसे कदम उठाने के लिए प्रेरित करता है—

'ठाम जुहार किमी सम तोले
वीजै नवि मिलसां हमि बोले।

रलोतमि मीर मिही रुहिदास
बसाहति जाखि कि माइव बास ।।

यहां अंत की दो पंक्तियों में शब्दों के ध्वन्यात्मक-गुण से वर्ण्य विषय की अभीष्ट ध्वनि मुखर होकर स्वतः अभिव्यक्त होगई है।

कवि ने कहीं भी 'ट' कार 'ड' कार आदि कोमलवर्णक वर्णों का अस्वाभाविक और कृत्रिमरूप में प्रयोग नहीं किया है। दो-एक स्थलों पर ऐसा आयोजन किया भी है तो वह वातावरण के अनुरूप चित्रण के लिए अथवा वांछित ध्वन्यात्मक गुण लाने के लिए ही हुआ है। कवि ने अपनी भाषा में नाद ध्वनि का संचार करने के उद्देश्य से छंद के चरण के प्रत्येक शब्द का आरंभ प्रायः समान वर्ण से किया है।[1] यथा—

क मुगपति मुणे महीर
ख रिण भो रहियां राज रखेसी,
ग बजाला बहे विढ़ बीराबीरां
घ मरण आपे अभिमान,
ड॰ रास रमण रिण रूक
च साव सबीक ससकर

इसी प्रकार कवि ने अपनी शब्दावली में संगीतात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए समान शब्द-खण्डों की आवृत्ति भी की है।[2] यथा—

क मारण मरण करण रण मामो
ख करण मरण पह काज

इतना सब कुछ करने पर भी उसने कहीं भी फालतू और अप्रयुक्त शब्दों की भरती नहीं की है।

वचनिका की भाषा की यह विशेषता है कि उसमें एक ही शब्द के दर्जनों पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अकेले मुसलमान शब्द के लिए २० पर्यायवाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं। यथा असुरायण, तिमुर, बुखारिम, खान, बच्या, खानरिमान, मुगलान, जवन, दंमाम, पीवा, मलेच्छ, मैछ, मुगल, मुगलाण, मेछाण, रवद, रौद्र, रौदाण, रद, रौदायण।

इसी प्रकार हाथी, घोड़े, तलवार, आकाश आदि के लिए भी अनेक पर्यायवाची शब्द आये हैं।

---

१ डा॰ टैसीटोरी-'वचनिका' सं॰ रतनसिंह महेशदासोतरी की भूमिका पृ॰ ४
२ वही पृ॰ ४

भाषा प्रसाद गुण सम्पन्न है इसके लिए एक ही उदाहरण यथेष्ट होगा—

वनिता मुख पूंनिम चंद वणी
प्रिय भ्रू ह कमां प्रिय रूप मणी ।
कण्ठ कोकिल कण्ठ प्रमारकसी
मग मायक मतरक ममा रजली ।।

अरबी फारसी के शब्द यथेष्ट संख्या में प्रयुक्त हुए हैं किन्तु वे सर्वत्र राजस्थानी रूप ग्रहण किये हुए हैं। कवि ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का भी प्रयोग किया है किन्तु उसकी रचना में तद्भव शब्द ही अधिक मिलते हैं।

भाव–व्यंजना

✓वचनिका एक भाव प्रधान वीर रसात्मक काव्य है। स्थूल कथा तत्व के अभाव में कवि की भाव प्रवणता ही उसके काव्य प्रणयन का आधार बनी है। कवि ने अपने आश्रयदाता महाराजा रत्नसिंह के निःस्वार्थ त्याग और बलिदान पूर्ण शौर्य को प्रतिपादित करते हुए क्षात्र-धर्म और आर्य-गौरव की भाव-मयी अभिव्यंजना की है।

जग्गा स्वयं वीर-क्षत्रिय था उसने अपनी रचना में क्षत्रिय जाति के आदर्शों विश्वासों और संस्कारों का अत्यंत ही मार्मिक चित्रण किया है जिससे इसमें वीर रस की उद्दाम-धारा फूट पड़ी है।

यश और निष्कलंक-कीर्ति वीर-क्षत्रिय की थाती है, जिसे वह विशिष्ट युद्ध रच कर आत्मोत्सर्ग द्वारा अर्जित करने के लिए सदैव आतुर रहता है—

'रिण रामायण जिसो रचावां
करै मरां चंद नाम मिलावां।'

अपने नाम को चन्द्रमा पर अंकित करने की आकांक्षा से प्रेरित वीर भला कब चाहेगा कि जग उसे बुरा कहे—

'रिण भी रहिया राज रहेसी
अपयश कोई न बुरौ कहेसी।''

हार जीत हरि के हाथ है, पर प्रतिद्वन्द्वी से भिड़ जाना ही श्रेयस्कर है—

हार जीत बातां हरि हाथै
भिड़ै मतिमाहिं बरिस हू बाथै।

और 'यश' नर है और निर्णय हरि के हाथ है—यही विश्वास उसे प्राण त्यागने के लिए प्रेरित करता है—

"हाथ कुठार लिये नव खेम

बीबो तिके भलां मरि जावो
मार्गे अमि भी मार्ग मा यो ॥

धर्म रक्षार्थ प्राण देने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इसी भरोसे पर वीर मरने को प्रस्तुत हो जाता है—

कामे मरण मनोरथ कीधा
साम भरण मारथ मुखि सीधा ।

इस असत्य संसार में सब निःसार है मात्र-स्वामी-धर्म ही सत्य है। वही धन्य है जो लड़ना और मरना जानता है।[1] तो फिर वीर इस धर्म का त्याग कैसे कर सकता है? और फिर यहां तो सूरजपती की पवित्र तीर्थ धारा है—वह खण्ड-खण्ड होकर गिरेगा और निश्चित ही स्वर्ग का अधिकारी बनेगा—

खांगों री धार करि अपच्छरि वरणाइहि वैसीजै। पाति-साहां रै सुत धाउ कीजै। पुरजा पुरजा हुइ पड़ीजै। तो वैकुण्ठ वडीजै।

निज धर्म रक्षार्थ क्षत्रिय अति-मारा का पान करेंगे और शत्रु-दल को भी *करवायेंगे माथे फोड़ेंगे और कुड़वायेंगे एवं रणांगण में बादलों की तरह हाथियों से* टक्कर जायेंगे। महादेव को शीश अर्पित करेंगे तो अप्सराएं उनका वरण करेंगी देवता उनकी पीठ ठोकेंगे और जग में उनकी कीर्ति रहेगी—

"इक पिसणा पिसरणां पाड़स्यां। कायर बिहुविस्यां बिडस्यारस्यां। रिण खेत रै बिखे ऐथिये बाणाति मतवाला ज्यू घूमता वर्गा हाथियां सु टला वाड़स्यां। महादेव नै सिर देस्यां। अपछरां वरां। देवता स्याबास कहिसी। वात रहिसी।

इसीलिए *युद्ध' वीरों* के लिए एक असम्य अवसर है—वे इससे अपने वंश को समुज्ज्वल करते हैं (८६ वचनिका पंक्ति १-५) और रण-समुद्र में असि-जहाज पर चढ़ कर संसार सागर से पार हो जाते हैं—

' असा वीत रिण समग्र माहे असि जिहाज वरां। किसम्या वहा मारि पारि करां। मरां तो अपछरां वरां नहीं तो जीवित सिम्य हुइ ऊबरां।

उवरने और अप्सराओं को वरण करने की उत्कट आकांक्षा वीर में परम उत्साह का संचार करती है—

सूरां पूरां रा कांयरां रा मन बणणाइ में ऊमा हूवै। पोरिस वडै सनि खारव चढै।

मरण की असम्य आकांक्षा स्वर्ग चढने की प्रबल चाह और स्वामी-धर्म की टेक से प्रेरित प्रण सबसाए बिड' वीर के लिए जीवन हेय बन जाता है। फलतः वह

१—इसका फुट नोट कृपया अगले पृष्ठ पर देखें।

वीरत्व का बाना धारण करके मनुष्य का मंथन करता हुआ काव्य को टूक-टूक कर डालता है—माया को त्याग कर अपनी काया को गंध की भांति मंथनशील बना देता है (जो यदि दृढ़ थी है तो घुमती भी है)—

'पञ्चगा सिमे माम पम्मा प्रबर्द
बत्तां मारि सग्गे करै सग्ग सगं ।
भरम्भा न पारै महाजुध माया
करै काम साली जिसी टूक काया ॥

वीर के संस्कार स्थिर, निश्चित अटल और चिरस्थाई शाश्वत हैं, अतः उनके रस-क्षेत्र में भय सके होने का प्रश्न ही नहीं उठता वह तो भागने वालों तक पर प्रहार नहीं करता—

न भावै जिके युद्ध भार्गा न म रै
सरीरं हुआं सम्म पिण्डाण सारे ।

इस प्रकार कवि ने अपनी ठोस और सशक्त अभिव्यंजना से क्षत्रिय जाति के तेजोमय वीरत्व गौरव-मण्डित धर्म-संस्कार और उच्च कर्तव्य-भावना का नितांत मार्मिक एवं प्रभावशाली चित्रण किया है। वीर-रस के परिपाक के लिए यही अपेक्षित है, क्योंकि 'उत्साह स्वतः व्यक्त नहीं होता, किसी न किसी भाव से प्रेरित होकर प्रकट होता है। जिस भाव से प्रेरित होकर वह प्रकट होता है, उस भाव का अभीष्ट कोई कर्म होता है और वह कर्म उत्साह की सहायता से सिद्ध होता है।[२]

कथनिका में हम उत्साह' की जो लहर आद्यन्त व्याप्त देखते हैं वह क्षत्रिय योद्धाओं के जातीय संस्कार जन्य वीर-भावना से प्रेरित है। इस भावना का अभीष्ट कर्म 'युद्ध' है जिसकी सिद्धि उत्साह से हुई है। यही भाव-जन्य 'उत्साह' रत्नसिंह को युद्ध-कर्म के लिए प्रेरित करता है इसी उत्साह' से उसकी रोमावली में पौरुष का संचार होता है और यही 'उत्साह उसकी भुजाओं में हाथियों को पछाड़ने का बल भी भरता है। यथा—

चढ़े बीम विधि भार भरण कुरुक्ष बिचारे ।
तबै मीड़ चढ़ि सोह सोह औरहां नृप सैंमरा ।
तारिख युध कमधे बाण पाञ्चन्य भरम्मसु ।
उम्हने रोम पौरुषिय मति चढ़े पञ्चारस सैमरां ।
चढ़ै सरीर असरि स्याम टूटै सीस पमाभ्भरां ।

१—सामंत सूर सामन्य मनि सज्जिय भज्जिय वाजिये ।
संसार सकल पति, रहै तन भरि मागिये ॥ पृथ्वी राज रासो । छंद २०२ सं० ४४

२—द्रष्टव्य—श्री हरिकृष्ण-वीर-रस का शास्त्रीय विवेचन पृ० : ४१

वीरों का यह 'उत्साह' अपने सामने काल को अपनी चाल से चलाने वाले 'सईंवालि मू चलावे काल मूझा' और अपने पौरुष से स्वयं चलने वाले उसे अपरे रीस जैसा दुधर्ष प्रतिपक्ष के योद्धाओं का आलम्बन पाकर धड़धड़ाते नगारों के सिन्धु राग- सिन्धू धह़ वह़ नद़ गीसाण जिहसे आकाश से धार और गोलों की वर्षा बिढता लागी बरसवा गोला सर बैगाण -एवं शकुनियों-योगिनियों आदि के रण-क्षेत्र में मुक्त विचरण से उद्दीप्त होकर और अप्सरावरण की कामना, देवताओं से साधुवाद प्राप्त करने की इच्छा अक्षय कीर्ति (महाभड़ मै सिर पैस कर्ण धपस्वर्ग वर्ग। देवता स्याबास कहिसी। बात रहिसी।) की आकांक्षा आदि संचारियों से परिपुष्ट होकर वीर रस के पूर्ण परिपाक में समर्थ हुआ है।

वचनिका का प्रधान रस युद्ध-वीर है फिर भी रतनसिंह अपने डेरे में दान-पुण्य करने के वर्णन से इसमें दानवीर का भी समावेश हो गया है। यथा—

वड तीरथ मझि दीप दिवां दिठ
सपत धात वीरंम मिलमी सह
धमने मस देणा मुम्ही वह।

रतनसिंह के बलिदान को धर्म-वीर के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। उसने अपने स्वामी के प्राणों की रक्षा कर अपने प्राण दे दिये। स्वामी-धर्म का यह उच्च आदर्श है जिसका उसने पूर्ण निर्वाह किया है। इसी प्रकार रतनसिंह की रानियों ने भी अपने पति के साथ सती होकर सती-धर्म का पालन किया है।

वीर रस के पश्चात् 'वचनिका' में दूसरा महत्वपूर्ण रस है 'शृंगार'। रतनसिंह की मृत्यु के बाद रीति-कवियों के से नख शिख वर्णन के साथ 'शृंगार' के आयोजन को देख कर पाठक को आश्चर्य होता है। कटि सिंह नितम्ब-जंघा कदली वनिता मुख पूनम चन्द्र यसी मृग मू ह वर मणी आदि उक्तियों से रस-विरोध की भी शंका होने लगती है, परन्तु वास्तव मे ऐसा है नहीं।

'शृंगार' के इस आयोजन के पीछे क्षत्रिय नारी के आदर्श का आधार है। वीर-क्षत्रिय रानी की जन्मजन्मान्तर की यही साध रही है कि उसे वीर-पत्नी कहलाने का गर्व प्राप्त हो और उसे रण क्षेत्र मे वीर-पति को प्राप्त अपने स्वामी के साथ सती होने का अनन्य अवसर मिले। उसे जब यह अवसर मिलता है तब वह सोलह शृंगारों से सुसज्जित होकर अपने पति की धधकती हुई चिता में प्रविष्ट हो जाती है। इसी दृष्टि से कवि ने यह शृंगार की अवतारणा की है।

यह अवश्य है कि इस 'शृंगार-वर्णन' में काम की कमी मन मथ बीज, विरह की बीज मुख की सिलाक दुति क्षत्रिय गात दिन्है धवर्द लाज लोक तजे विधि सति सती आदि उक्तियों में रीति-कालीन शृंगार कवियों का सा हल्कापन आ गया है।

इसे तत्कालीन काव्य-धारा का प्रभाव कहा जा सकता है। फिर भी कवि सजग है उसने इस वर्णन को अधिक नहीं खींचा है—त्रोटक के ४ छंदों में ही समाप्त कर दिया है। साथ ही उसने रानियों को 'कुलवंती' 'पतिव्रता' आदि कहा है और उन्हें सांसारिक भ्रम से दूर अपने हृदय में पति के ध्यान को धारण किये हुए चित्रित किया है। यथा—

"चिति भाम सुराम सम्भारि चली
भ्रम मोह संसार बिसार अली।
मिलिया प्रिय भीम सबै मरणं"

अंत में 'कुकुभ' में रत्नसिंह और उसकी रानियों का संयोग दिखा कर—पूर रत्न सतियां मिलिया चाह महत्त्व-संपूर्ण शृंगार-वर्णन को सार्थक कर दिया है।

इस प्रकार वीर-रस के साथ शृंगार की योजना कवि के प्रमाद का परिणाम न होकर सती-धर्म पर आधारित क्षत्रिय-परंपरा का प्रतीक है।

कवि ने सर्वत्र वीर भावना और क्षत्रिय-धर्म के आदर्शों से प्रेरित होकर रचना की है, अतः उसने मृत्यु, संसार-त्याग आदि पर करुण या शांत रस का प्रतिपादन नहीं किया है, फिर भी ऐसे स्थलों पर शोक और निर्वेद भाव स्वतः व्यक्त हो गये हैं। 'सती उमंगे सब दिसा मोह तजै क्षिति लोक' से निर्वेद भाव-जन्य 'शांत-रस' की अभिव्यक्ति हुई है, तो हे हे भ्रात पुकार हुव राम राम मणि राम द्वारा व्यंजित शोक की धारा 'करुण-रस' का प्रतिपादन करती हुई प्रतीत होती है।

युद्ध-वर्णन में कहीं कहीं वीभत्स चित्रण भी प्रस्तुत किये गये हैं। यथा—

(क) जमा धरि धार हुमे धि-धि धम्म
(ख) रत्तवाहि नीर बिहीं अहिराम।
बलाहलि काढ़ि कि भाद्रव साव।
(ग) धंसी धप भ्रांड भिराट भवम्म
पड़े धि-धि धंध पड़े मढि धम्म।

वीभत्स के ये प्रसंग वीर-रस की पुष्टि के लिए ही आये हैं। अतः इनके समावेश से वीभत्स-रस की अवतारणा नहीं मानी जा सकती।

संभव होते हुए भी कवि ने अपनी रचना में भयानक और रौद्र रसों की सृष्टि करने का प्रयास नहीं किया है। अलबत्ता उसने अद्भुत-रस का नितांत ही सुन्दर परिपाक दिखाया है। विष्णु, ब्रह्मा इन्द्र आदि देवों का कथाक्रम में समावेश, विश्वकर्मा द्वारा निर्मित नगर का वर्णन देवताओं द्वारा आयोजित रत्नसिंह का अभिनन्दन समारोह और अंत में स्वर्गलोक में रत्नसिंह और उसकी रानियों का मिलाप सभी अद्भुत हैं।

वचनिका

राठौड़ रतनसिंघजी री महेसदासोतरी

भाषा शास्त्रीय अध्ययन

वचनिका की भाषा डिंगल है। इसमें डिंगल के प्राचीन और परवर्ती दोनों स्वरूप लक्षित होते हैं। इसकी भाषा सम्बन्धी विशेषताओं का आकलन इस प्रकार किया जा सकता है—

१ संयुक्त व्यंजन के सरलीकरण की प्रवृत्ति है। यथा—विसन (विष्णु) नरेसुर (नरेश्वर) सरसती (सरस्वती), कमधज (कमध्वज) आदि।

संयुक्त व्यंजनों के परिवर्तन में सबसे महत्वपूर्ण अन्य व्यंजन+र तथा र+अन्य व्यंजन हैं। कहीं कहीं व्यंजन द्वित्व के साथ ही रेफ विपर्यय भी हो गया है। फलतः वचनिका में धर्म के धरम धरम्म एवं ध्रम्म तीन प्रकार के रूप मिलते हैं।

२ प्राकृत अपभ्रंश की भांति व्यंजन द्वित्व की बहुलता मिलती है यह द्वित्वीकरण प्राय मध्यांत में होता है। यथा—कम्म सद् नद् आरम्भ भीज्ज सुग्गम किरतम्म सुमत्ति, करतम्म सुमपत्ति आदि।

३ छंद के अनुरोध री प्राय लघु अक्षर को गुरु और गुरु अक्षर को लघु बना दिया गया है। लघु को गुरु बनाने के लिए अन्तर्गत—

(क) ह्रस्व-स्वर का दीर्घ कर दिया जाता है।

(ख) स्वर के साथ अनुस्वार जोड़ दिया जाता है।

(ग) व्यंजन को दुहरा कर दिया जाता है।

(घ समास में भी द्वितीय शब्द के प्रथम व्यंजन का द्वित्व करने की प्रवृत्ति है। अनुस्वार के अनुनासिकीकरण की विधि काम में लाई जाती है।

ध्वनि-विचार

(क) प्रयुक्त ध्वनि

स्वर—

ह्रस्व-स्वर—अ ऑ इ उ ए ओ

दीर्घ-स्वर—आ ई ऊ ए ऐ ओ औ

व्यंजन—

क ख ग घ ङ
च छ ज झ ञ

ट ठ ड ढ ण
त थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल ल़ व
स ह ळ

टिप्पणी— 'आं' 'आ' का ह्रस्व रूप है । टैसीटोरी ने इसके लिए आं चिह्न का प्रयोग किया है ।

(ख) ध्वनि विकार

१ स्वर-विकार—

अ = इ – किंवाड़ (कपाट)
इ = ऐ – हैम (हिम)
औ = ऐ – कैरव (कौरव)

२ व्यंजन विकार—

क = ग – ग्राहग (ग्राहक) तरगस (तरकश) मुगट (मुकुट) बालिग (बालक)
ख = ग – पुरखीमन (पुरखीमन)
ट = ड – घड़ित (घटित) महाभड़ (महाभट्ट)
ण = न – बिसन (विष्णु) कान (कर्ण)
त = ल – पयाल (पाताल)
त = थ – भारथ (भारत)
न = ण – बामण (बामन) चौगाण (चौगान) थाणक (थानक)
प = फ – फरसि (पर्शु)
ब = म – कमन्ध (कबन्ध)
भ = ब – भवन (भवन) बुध (बुद्ध) भारत्थ (भारथ)
य = इ – पाइक (पायक) रामाइण (रामायण) काइर (कायर) कपिराइ (कपिराय)
व = म – निमाह (निवाह) पमन (पवन)
व = ब – पूरब (पूर्व) अबाव (अवाव)
व = उ – भरतावत (भरतावत) भाउ (भाव)
ह = घ – सिंघ (सिंह)
स = ह – केहरी (केसरी)
प्स = छ – अपछरा (अप्सरा)

असंयुक्त महाप्राण घोष और अघोष व्यंजनों का महाप्राणत्व ही शेष रह गया है। यथा—

ख रेहा
थ पुहवि
ध : वसहर मेह
भ नहीरं

रूप–विचार

जाति—संज्ञा शब्दों की दो ही जातियां हैं—(१) नर जाति और (२) नारी जाति। नर-जाति से नारी जाति बनाने के प्रत्यय 'ई' और 'इ' हैं। यथा—

इ—सेनापति कुलपति

ई—सम्राही वैरणी दूसरी तरणी री, ऊभी

वचन—वचन दो हैं—(१) एक वचन और (२) बहुवचन। बहुवचन बनाने के लिए नर जातीय शब्दों में कोई प्रत्यय नहीं जुड़ता केवल ओकारांत शब्दों में 'आ' प्रत्यय जुड़ता है। यथा—बारहो (एक वचन) बारहा (बहुवचन)—'बड़े बारहा जाणि आडम्भ जाणा।

नारी जातीय शब्दों को बहुवचन बनाने के लिए 'आं' प्रत्यय जुड़ता है। यथा—

एक वचन	बहु वचन
कतार	कतारां
महासती	महासतियां

बहु वचन बनाने के लिए 'इण' (सं वत्स अप अण) का भी प्रयोग हुआ है। यथा—

असुराइण

कारक—

हिन्दी की भांति राजस्थानी में भी संज्ञा शब्दों के दो रूप होते हैं–१ विकारी और २ अविकारी। अविकारी रूप भूतकाल सकर्मक क्रिया को छोड़ कर शेष क्रियाओं के कर्ता कारक में प्रयुक्त होता है और विकारी रूप भूत कालिक सकर्मक क्रिया के कर्ता के रूप में प्रयुक्त होता है।

कारक रूपों के उदाहरण

कारक	एक वचन	बहु वचन
१ कर्ता		
अविकारी रूप	१ भारत भुज मीघा।	१ देव दाणव मति मुआ
	२ ओध अराति मिळे सिर आयो।	

क	एक वचन	बहु वचन
	३ माजै हारि पयन्धो ।	
	४ मरी छोजिजै मीर निम्माण मामा ।	
	५ फटे धाम के बाणि सामग्र फट्ट ।	
	६ पवन मावसी ।	
	७ पज मैहर रिण माजियो ।	

र्ति

गरी रूप

उभासिक सकर्मक (क्रिया का कर्ता)	१ रतन भुमाजियो जसै रमण रिण जंग ।	१ बहुस्यां धुर्य पाम पामाम बामा ।
	२ कसी मरण मनोरथ कीधा ।	२ हमीसां हिले घेप हर्षती ।
	३ मांचजिमे मका पप माहे पुहा विया ।	
	४ पर्व पाहिजै बाट मोबाट पगे ।	

कारक	एक वचन	बहु वचन
२ कर्म		
अविकारी	१ नपर्व मसो बचाजियो धुम-मप्पण बयरास ।	१ बम बारम ठाबीन है ।
	२ पांति रची बीसर मीचासे ।	
	३ कमि राजपूत पोखिमा कामे ।	
	+	+
विकारी रूप	१ मरण तणी घोबो है मोप्र ।	१ कामरां प्र ठग्डी मापी ।
	२ छती हमने मम विसा ।	२ मपवरां बरां
	३ मेष बबा किसी मस्थपियो ।	३ मीर तीरां बनाबै ।
	४ मौरंग साहि किसी मामो-हम ।	४ गिरा है बिके माठ्या पारिपज्जं ।
	५ टीलो राज मरा बम तातू ।	५ बर्सा मरि बमोकरे सम्म-सम्म ।
३ करण	१ बिमि पेरि मपो सम ।	१ बप मारां मंबस बमी ।
	२ रमी मोम पु बिटिमा	२ पातिसाहा रै फौज

	गज्जराजे ।	सु सर्वा ।
	३ जाते काम सु वालि सु म्यालिजु ।	३ हुभियां सु दसा वाहस्यां ।
	४ सांहे चाखि सु चलावै कालसूता ।	
४ संप्रदान	१ सामि काभि भंजिये देहा ।	१ कवि सुरां कू ।
	२ सभे चाखियो प्रेम उग्मेणी साह ।	२ घड तोरण मधि दीप दिसां दिस ।
	३ कमधज राव तणा बसना कवि ।	
	४ महाराज नै सिर पेस करो ।	
५ अपादान	१ नदी हेम भी भै चाली जांणी नीरं ।	१ सरीरां हुवो चम्प पिम्बास सारे ।
	२ कलस्के पिरां मेर भी नीरसतं ।	
	३ भातलोक थी जमलोक जाइस्यां ।	
	४ आकास सु जीवनमय विवाण पिणी आया ।	
	५ वैकुण्ठ सु मिलमी सहित……।	
	६ इन्द्रलोक सु तेतीस कोडि देवता ।	
	७ कविलास सु सिव वाहस्यो चम्पी ।	
	८ हुवे मारि पारै पंखी चोम हूतां ।	
	९ चली हालियो आपण हुविम्यायं ।	
६ संबंध	१ निमा साहिरां मम्बाए सम्बलायां ।	१ राजवां पति राजत ।
	२ काल्ही रा कलस ।	२ वागी वाजण वैणाजव सिरदारां-सरदार ।
	३ सती रा मायेर ।	३ देवां दरसि फरसि चाडणारे
	४ दिल्ली रा मर भारथ ।	४ कमन्ना वडा कुरिया साथि कीया ।
	५ सांडा री बाट बडी ।	५ लोहा रा चोह ।
	६ पणी री काम निबी री परम सांचवीजै ।	६ फौजां रा वारा ।
	७ पातिसा रै छत्र बाज बीजै ।	७ पातीसाहां री फौजां मही ।
	८ आपरै पुत परिवार नै ।	८ वाण गोलां सरां री मारि

९ महेसदास का बाबा । ९ कीरतियां री सू मको ।
१० सत् कमल हंस का बणाऊ । १० बाबा बरियामां तणां ।
११ धोरम्भको महरि । ११ सिरवर मव पाटांह ।
१२ बहुती की वस बाहुतां । १२ म्याग म्यागह मन भरे ।
१३ कुम्मार तणो भकर ।
१४ खाह मिले विविध तणा ।
१५ रोस उणा कपिराह ।
१६ सिणिगार भिमा रठमेध तणो ।
१७ मात लई हेरे फिरि मायो ।
१८ राघो रेसामर तणो ।
१९ जिहमां बणे हूमवी मेसनाथी ।
२० वस सिवार वो री वी ।
२१ धरवण बाख ।
२२ दरम्मह मम्मपार ।
२३ पी मारथि पंबा हुरी सिरमार मव पाटांह ।
२४ हलपम्त गजू मैता हुरो ।

---

७ पसिकरण
१ मापे झारि मवम्ती । १ मैबि मजां मेवाडम्बर ।
२ इधि पंथि मोरे महोर ।
३ म पंथ महुवे माविमी
सासव प्रसेबदेव ।
४ कुम माण बरै प्रपञ्जो कमंध ।
५ तिम ती मात साफायम्म
माह सिरै बटी ।
६ हाथिमा रे जु गाजती धप घटां मवाजां ।
७ पके मामिमा सहि मेहा पतंग ।
८ जिमां माहि सभी मखे रेव तारां ।
९ रिण समम्म माहे मवि मिहाम बया ।
१० पह रतन मम्मि राति ।
११ माबे वाहुपे माणि हुडी महजम्ब ।
१२ पुरम्बि जिमां तोम पैकम्प पूप ।
१३ कणपे हुमां हुक पै मारु कर्ता ।
१४ पूम माप सिधि सदि पहां ।

८ संबोधन १ बापू बापड़ा   १ ठाकुरां । सवरंज री
          २ माई हो माई ।   ख्याल-मण्डिमी ।
          ३ बाप हो बाप ।

सर्वनाम

वचनिका में आये हुए सर्वनाम शब्दों के विभिन्न रूप इस प्रकार हैं—

प्रकार	मूल रूप		विकारी रूप		संबंधकारक रूप	
	एक व०	बहु व०	एक व०	बहु व०	एक व०	बहु व०
१ पुरुषवाचक (क) उत्तम पु०	हूं	+	मो मी मोनू	म्हांपे	म्हारो माहरे मूझ मी	मापणी
(ख) मध्यम पु०	तुम थें	+ +	तो तोनू	थां थें	+	थां
(ग) अन्य पु०	+	वां	तै तिका तिको ताह	तिमां त्यां त्यानू तिकै	ताहरा	+
२ निजवाचक	+	आपा अप्प आप निज	+	+	+	+
३ आदरवाचक	आप राजि	थें	+	वां	आपरै	+

प्रकार	मूल रूप		विकारी रूप		संबंधकारक रूप	
	एक व०	बहु व०	एक व०	बहु व०	एक व०	बहु व०
४ संकेत वाचक						
(क) निश्चय वा०	आ औ	ए	इण अणि उणि तिणि तिणा	तिणां इणां त्याहू	+ + + + +	+ + + + +
(ख) अनिश्चय वाचक	को कोई केई	केइक	+	+	+	+
(ग) निज वा०	पू	+	+	+	+	+
५ प्रश्न वा०	कुण	किणि कासू	+	+	+	+
६ संबंध वा०	जै +	जैणि	जिणि जिण जिहि जेहा	जैणि	जास जासु	जास जासू जिणां जणां जिको

क्रिया

क्रिया के रूप

काल एवं पुरुष	एक वचन	बहु वचन
वर्तमान तथा विधि काल		
प्रथम पुरुष	प्रत्यय–	प्रत्यय

काल एवं पुरुष	एक वचन	बहु वचन
	ऊ– भालासू कमधज्ज पुहविपत्ता धमपती ।	आं– १ पातिसाहां री फौजां सू मडां । २ फूलधारा बिधि ऊडि पडां । ३ महाभारथ करि मरां । ४ रिण समन्द माहई मथि बिलाय मरां । ५ अपछरां बरां ।
मध्यम पुरुष		प्रथम– औ– १ बडा राम माहे बडा हुई गमाडो । २ सूरां पूरां बिभिमां री बार सुणो । ए– १ बखी री काम किणी र धरम सांचवीजै ।
अन्य पुरुष	प्रथम ऐ– १ उभी विरदां उबरै । २ भुज पूजै साहिजहां पता । ३ नह भज्जै दीवाण । ४ रावि दीह मन्नर पढ़ै । ५ पुण्य हुवे तारी भाप । ६ पवै माहिजै बाट चौबाट पमे । ७ बहन्ती हसी पन्थि पौपै महीरं ।	प्रथम अ– १ वहै बाथला बाणि भाइयवाला २ भारोहै घेराणियां । ३ पुरा हुवे जिम्म जीव । ४ कवि बमे बैकार । ५ हुवे समाहु समाहु । ६ पटे ऊरटे मह माप ।

काल एवं पुरुष	एक वचन	बहु वचन
भविष्यत्-काल उत्तम पुरुष	प्रत्यय– +	प्रत्यय– स्यां इस्यां १ हक पियाला <u>पीअस्यां</u> <u>पाइस्यां</u> । २ पाधर विहडि<u>स्यां</u> विहडाइ<u>स्यां</u> । ३ जुध <u>करिस्यां</u> कैरव पाण्डव जिम । ४ बीबी भांति <u>मिलस्यां</u>…… ।
मध्यम पुरुष	प्रत्यय– सी–इसी ऐसी १ नाव <u>रहिसी</u> । २ रिण भी रहिसी राज <u>रहेसी</u> । ३ कमधां कोइ न बुरी <u>कहेसी</u> । ४ सकति <u>नाचसी</u> । ५ पवन <u>वाजसी</u> । ६ …जमराज <u>धुजसी</u> । ७ हिन्दू असुरायण <u>सजसी</u> । ८ चारणी ही बेईक <u>सुणसी</u> ।	प्रत्यय– सी इसी देवता स्याबास <u>कहिसी</u> ।
भूत काल	प्रत्यय– यौ– १ जिणि बेहिण <u>गयौ</u> जग जीति बरै । २ तूं <u>कहियौ</u> असपति । ३ पोती सार्थ परि<u>हियौ</u> ।	प्रत्यय– या या इया १ बैसिया दल दप्पस बैठि <u>लिया</u> । २ …वबक पखिअ <u>लिया</u> । ३ हिन्दू नाम <u>हकारिया</u> जिण असी बैठिय । ४ वै वै तरपस <u>कम्पिया</u> । ५ <u>बैठा</u> वै मालोच बहादर । ६ रखी बोम पू <u>बीटिया</u> गज्जराजे । ७ इहा <u>पाया</u> मर सुवाया । ८ वै पखपति बाहिसिया ।

काल एवं पुरुष	एक वचन	बहु वचन
	ई मी–	मे–
	१ मार्ये छत्र मन्नाविमो ।	१ खिमहां जामा अबई ।
	२ प्रूजलिमी रज बैण ।	२ मणावै मणू स्याम मच ।
	३ मो पां मागी मैल्हिमी ।	३ पटै ऊपटै महमारा पदार्थ ।
	ई–(नारी-जाति में)	४ मर्त भट्ट बल्ली मिरं मम्मकाला ।
	१ सीस छत्र कीपी लप साप ।	५ पत्रै बप पन्ती मापे रम्भकीग्रं ।
	२ भ्यारि कुप मना रही ।	६ कुरक्षं मवाका ततमाल लावै ।
	३ बैर म्यास बालमीक लही ।	७ पीम चाबिप वीरपच्चा बाघुर बीमे ।
	४ ऊभी चाघे रैख तार्त ।	
	५ माइ सिरै चढी ।	
	६ दुद पाइ पातिसाहां री फौजां मढी ।	
	विशेष रूप—	
	ये–पूजा करि बेरे पापरे ।	
आज्ञा	प्रत्यय—	
मध्यम पु०	श्री–	
(आदर वाचक)	१ बढा राम माहे बढा दूहा गवाओ ।	
	२ सोवन में महिमावत पैदास करी ।	
	३ सहर री नाम रतनपुर धरो ।	
	ईज—	
	१ वैकुण्ठ बास दीजै ।	
	२ हरि आइला मायह दिन री मुजम कीजै ।	
	३ मंगल मवम संभाइयी कीजै ।	

संयुक्त क्रिया

उदाहरण :

१ वेसा पचीस मंत्र बणाय करि बैठा राजै पुर ।

२ महाराज मैं आयबी मजूर ।

३ जोड़ हिमी फिरि जाइरमां ।
४ ताहि तभे वैसाए ।
५ फूल चापां विधि जड़ि पड़ां ।
६ पड़ बैठि जिमी ।
७ हुए बैठी पतिसाह ।
८ नजाड़ कही ।
९. बिलतां लागी बरसबा ।
१० रिठ बसेत मिलिस फुलि रही ।
११ चीठोहीज बणि मावै ।

प्रेरणार्थक क्रिया के प्रत्यय—

प्रेरणार्थक क्रिया बनाने के लिये निम्नलिखित प्रत्यय प्रयुक्त हुए हैं :—

आड़ :

१ बड़ा राय माहे बडा हूहा बजाडो ।
२. मेर मजेज बजाडी ।
३ पाणी रस अजाडी ।
४ मिलते बणां मनाडिया ।
५ समेड म्हारि उपाडि मिला मइदै ।
६ मर्दा पाडि पै झाडि पीछाडि मइदै ।

आर

१ बंधी पारि बैसारिया मीठ मजर्म ।

आव :

१ बिरावै जिके मोभ्मां पारिख मज्जं ।
२ बणीन क्माकत्त मीहुरत बेहा ।
३ करावै हुमां टूक दै भाड कसी ।
४ सखी बतावै ऊर ।
५ करावै मेव बणा बम्ब चवक ।

धातु के उपान्त्य स्वर को दीर्घ करके भी प्रेरणार्थक रूप बनाये जाते हैं—

१ पोथी बांची ।
२ बातराम काढो ।
३ मरै मारि चाढै जिके मछिमाणं ।
४ हणी मारि पाडै पैसी मोम हुंवा ।

कृदन्त

१ पूर्वकालिक कृदन्त

प्रत्यय—

इ—

१ सुमरि विसम सिव सगति ।
२ सुकदेव समरि समाधि सुधी ।
३ धारि सीप बालक धरा ।
४ रचि कीजै विस रवि ।
५ सुणा सिधि वेसिव सधि ।
६ सिरि परि धरि मुक्ता सुकर ।
७ करि पंच पाण सिनान महाधिव ।
८ वेदां दरसि-फरसि जाइ झारे ।
६ रतन मूधा कर माति बोले ।
१० पंडा मारिवैसारिया नीठ मग्ग ।

पे—

१ करे पातरां जम्मरां भूइ कासा ।
२ कमधज्ज मर्णीधिरि राज करे ।
३ " जप कीति करे ।
४ रिया बभाया देत दे ।
५ बमधारत ठाधीम दे ।
६ माया करे छवैरा ।

२. हेतु कृदन्त

प्रत्यय—

मण—

१ बम्पाय रतन बुमाविमो धमे रखण रिपु थंभ ।
२ पुप मम्मण बमजाण ।
३ सब रिमण ।
४ धम लिमण ।

इणा—

१ करिवा मारण मरण ।

एवा—

१ करेवा महासूर भारत्थ मन्नें ।
२ मरेवा करै कोड भारत्थ मन्नें ।

३. वर्तमान विशेषण कृदन्त

प्रत्यय—

अंत (नारी० — अंती)

१ वहन्ती इसी पंथि भीपै वहीर ।
२ पडन्ता हिमे भाम कन्मा प्रचण्ड ।
३ मरन्ता न मारै महासुभ माया ।

४ भूत विशेषण कृदन्त

प्रत्यय—

इया—

१ तुटै खाकिया काम कू वाण लागे ।

५. कर्तृवाचक कृदन्त :

प्रत्यय—

अण—

१ वाण गुण विभण ।
२ गजराज विभण ।
३ तारण तिणै पवन ।
४ मारण भला ।

तद्धित प्रत्यय

हार—

१ बासठि हजार फौजां रा भांजणहार ।
२ मैमन्त हाथियां रा मारणहार ।
३ पतिसाहा रा विभाडणहार ।

वाला—

१ कपै पाखरां बख्तरां वृहद वाला ।
वसै बाणि पाहाड़ हेमंत वाला ।
२ वहै बादसा बाणि मातम्मवाला ।
३ वहैं अणटां वडू राठौड़ वाला ।

कृदन्त

१ पूर्वकालिक कृदन्त

प्रत्यय—

इ—

१ पूजरि बिसन सिव सगति ।
२ गुरुदेव समरि समापि पुणं ।
३ चढि सीस धवधक धरा ।
४ रचि बीजै बिन राति ।
५ सूजा बिधि बैसिय सम्भि ।
६ सिरि परि धरि मुकुट सुकर ।
७ करि मंद पान सिनान महाब्धि ।
८ देखो वरधि-फरधि धाइ हारै ।
९. रतन मुकट कर भाति बीने ।
१० मंडो मारिवैसारिया गीठ धग्ग ।

ऐ—

१ कसे पाखरां बम्मरां धुर जाणा ।
२ कमधज्ज कव्होपिरि राव करै ।
३ ''राव कीति धरै ।
४ दिया बधारा बैस ऐ ।
५ दसधारस तावीन ऐ ।
६ मामा जवै उजैण ।

२. हेतु कृदन्त :

प्रत्यय—

मण—

१ बम्पव रतन गुमाविनो धमे रमण रिण जंग ।
२ धूप मम्बण धमधाम ।
३ जस लियण ।
४ जस निमरण ।

इवा—

१ करिवा मारण मरण ।

यथा—

१ करेवा महाभूर भारत्थ कत्थं ।

२ मरेवा करै कोड भारथ मन्नं ।

३. वर्तमान विशेषण कृदन्त

प्रत्यय—

अंत (नारी० – अंती)

१ बहन्ती इसी पंथि चौथै बहीर ।

२ पढन्ता किये भाम बम्मा प्रकारं ।

३ मरन्ता न भारै महाडुप मन्ना ।

४ भूत विशेषण कृदन्त

प्रत्यय—

इया—

४ बे बे तरमस बन्धिया तुरकी रहवाला तुरक ।

५ कुसिमन वाला ज्याय क्यू ।

मान—

१ रवि फौजां पैमान ।

२. बादल फिर करमान ।

३ जडी रजी घायी मरस किय म्हांनी फिरमान ।

४ कुपमम्मरण कमजान ।

५ बै भाई विरवान ।

६ हाकी जमदावान ।

मन—

१ मुजामन ।

वाली—

१ कानी वर्ता किवांड ।

२ कासी मधुमासी किमी ।

३ भीं वाली मुवाली, सवाली ।

४ हुमा कमधज हमाला ।

माण—

१ बवली जोधाण अनमी कर्य ।

२ हिंदुमाण तिलक हिन्दू बिहद ।

हरी—

१ बैतहरी करि जंग ।

अव्यय

(क) क्रिया विशेषण

(अ) काल वाचक

अई—आसीर पटे मड़ दीप अई ।

अब—जसवंत मीरेम साहअब ।

आर } अब —जगज्जय बोयलि किय जिमार ।

ज्यारां } —जसवंत पैम बोसिमों ज्यारां ।

जाम—सूटा रतनागिर मीरेम जाम ।

मचर्‌ [इ]था राठौड़ रतनसिंघजी री महेसदासोतरी ।]

जिणिवार—घार वणे मरि सोहियो जीपो ही जिणिवार ।
तई—टगटमी मम्मी तई ।

ताम
त्यारं
त्यारां
तिमारां
सई

तब —ताम रमण छेडियो मिमै तण ।
—त्रिभ्रेलोक कोतिय देखतं त्यारं ।
—तण माहेस मज्ज की त्यारां ।
—तीरि माहेस तिमारां ।
—समभाव करे सुरताण सई ।

(ख) स्थान-वाचक

तहै—तहै संजोग किमी ही न थै ।
मापसि—सोमगिरी मापसि समक्ष्ता ।

आगे—
पीछे— —आगे पीछे आव ।

अग्गे—मराबां रिवाबां किमा पट्ट अग्गे ।
ज्यां-जहां—ज्यां सहिवारां बोर ।

उप्परे
ऊपरे
ऊपर — —पवे उप्परे बाणि पूगे पलाखं ।
—जलटिमा हुत ऊपरे ।

कन्है
नीडै
के पास— —करनावत मराबर कन्है ।
—सुजावत नीडै मक्कर सम्भि ।

पारवती-गाउ-पहि मु इ कमबां पारवती ।
चौसरा-चारों ओर-चौसरा चंवर दुमे छै ।

दिसा
दिसि
दिसो
ओर —सती उममे सिप दिसा ।
—पूजा दिसि बैठिब सम्भि ।
—मार्गमसाहि दिसो माखी इस ।

बाहिर —मामा बाहिर पेम ।

बिचि
बिचे
बिचाम
बीच में— —बिचि मंड पंड मेरे बहा ।
—नौल बिचे विरदारे ।
—किमी व्योम बिचामे व्योम ।

४ है है तरगस बम्बिमा तुरकी खुमाणो तुरक ।

५ सुभिठम बाला ज्माप ज्यू ।

मान—

१ रवि फौसां रीझाम ।

२. मारद फिर करसाम ।

३ घडी रजी छमी मरस किम म्हांकी फिरसाम ।

४ कुमम्यरग बमआम ।

५ है माई बिरवाम ।

६ माकी बमरालान ।

मम—

१ सुवामन् ।

मानी—

१ म्हाकी बमा किमांड ।

२ म्हाकी मधुमासी किमी ।

३ मी मानो सुमासी लमासी ।

४ हुमा कमपम्म हमाला ।

माए—

१ मपदी मौमाए उन्मसा करें ।

२ हिंदुमाए तिलक हिन्दू मिहद ।

हरी—

१ मैठहरी करि अंग ।

अध्याय

(क) क्रिया विशेषण

(म) काल वाचक

मई—मामोर पटे मम भीम मई ।

मम—मसमंत मीरंम साहमम ।

मार } मम — —जमज्जम मौमाए किम मिमार ।

म्यारं } मम — —जसवंत मैम मौमिमों म्यारं ।

माम—मूम्य रतनाभिर मीरंम माम ।

वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री महेसदासोतरी ।

खिणिवार—धार तसै भरि बोहिमो कीधो ही खिणिवार ।

तई—टमटमी सभी तई ।

ताम
त्यारं
त्यारं } तब
तियारां
सई

—ताम रमण तेडियो निमै तण ।
—त्रिहुंलोक कौतिग देखर्त त्यारं ।
—तण माहेस मग्ग की त्यारं ।
—तेडि माहेस तियारा ।
—समान करे सुरताण सई ।

(घ) स्थान-वाचक

तठै—तठै संजोग किसौ ही न थै ।

आगलि—सोनगिरी आगलि समस्था ।

आगे—
पीछे— } —आगे पीछे आप ।

मझे—मयणां रियाणां किया मट्ट मझे ।

ज्यां-जहां—ज्यां सहिनाणां जोर ।

ऊप्परे
ऊपरे } ऊपर —

—पड़ै ऊप्परै बसि झूभै पताई ।
—उसटिया इम ऊपरे ।

कन्है
नीडै } के पास—

—करनावत मणधर कन्है ।
—सुजावत नीडै मच्छर समि ।

पारखती—पास-पड़ि मुंड कमणां पारखती ।

चौसर—चारों ओर—चौसर चंवर ढुलै थै ।

दिसा
दिसि } ओर
दिसौ

—सती जमरमे किम दिसा ।
—सुमा दिसि जैसिम समि ।
—मारंमसाहि दिसौ आवो इम ।

बाहिर —आगा बाहिर प्रेम ।

बिचि
बिचे } बीच में—
बिचास

—बिचि मंझ चंद मडि बरा ।
—गोम बिचे विरदारे ।
—किमी ब्योम बिचासे ब्योम ।

सांम्हा —उठै सर साम्हा प्रभत ।
साम्हीं सामने-आगे मूरतिय साम्हीं माई ।
सामुहा —सैन उघेरी सामुहा ।
पुठि-पीछे —कैवा पुठि संदेस विचारे ।
नेडा-पास —धम माथा नेडा ।

स) परिमाण वाचक

निपट —निपट मिळे दम मामा नेडा ।
जितरौ —पाधि जितरी कुण जाणै ।

(द) रीति-वाचक

ज्यूं-जैसे —पाघड ज्यूं पतिसाह ।
यूं —यूं घातै जमराज राघि जितरी कु ण जाणै ।
इम —घड़ै सिर व्योम कर्मवन इम ।
ऐम —सभै वालियौ ऐम उम्मीणि साह ।
ऐमि —माया कहिमौ ऐमि ।
केमि —कढी बाणदर्थ केमि ।
जैम —घावै जावै मयघरा जम माफ्न चढि-जैम ।
जैमि —मुवपति जैमि रतंम मए ।
जेही —जंगम्म पसम्म मुसमस्स जेही ।

(ख) संबंध बोधक विशेषण

सथे—साथ —साहि सगै के जाए
कजि —कमधज राउ सपा जतनां कजि ।
काज —करण मरण पह काज ।
ही —सती ही सावै ।
पग —टीको राज पग घल तोडूं ।
पति —वसवंत पति माने पुरति ।
साह —सभै वालियो ऐम उम्मीणि साह ।

(ग) संयोजक

किना-अथवा—किना संग्रामपति कुम्भेण कहीजै ।

फिर ⎫ मानो —बादल फिर बरसात ।

फिरि ⎭ —फिरि कुम्भोण करंत ।

अनै ⎫ और —सूरह अनै पतिसाह ।

अर ⎭ —पाया अर मुसाफा ।

कै-अथवा —कहो माम कै आखि सामंद मम ।

पिण —पिण भी महाभारथ री भायत ।

तो —तिका तो बात माव ।

तौ —तौ वैकुण्ठ वसिजै ।

(घ) विस्मयादि बोधक

वाह हो वाह—वाह हो वाह ।

वाह वाह —वाह वाह बापड़जी भली कही ।

विशेषण

(क) सादृश्यवाचक विशेषण ।

जिसी —रण रमइ संग कनंक जिसी ।

जेहा —जसि जेहा चवकै हुवा जिसा नंद नरेसुर ।

जैसी —जैसी बरखसी वैसी अणघार ।

जेहो —संगमं पतम्मं सुजमल्ल जेहो ।

जैसा —जसराज जैसा कमेसर ।

जिसा —जिसा मोमरक्क मनंक ।

जिसी —रिस्स रामाइस जिसी रणाय ।

जेसा —हलो रोम हैवाण जेसा दुर्गम ।

जैसी —जैसी बरखसी वैसी अणघार ।

(ख) सार्वनामिक विशेषण

इसी —वहंसी इसी पंथि भीपे महीरं ।
इसा —चलंता इसा मीर दीठां चलावै ।
इसे —आगै इसे विनाणि ।
इसकी —इसकी बल री आर्यणि आय ।
कैसा —समा वय कैसा ।
किसकी —किसकी ही क चीसै ।
किहुकी —कुलवंति पतीवरता किहुकी ।

शेष सर्वनामों का परिचय सर्वनामों के अन्तर्गत दिया ही जा चुका है ।

(ग) संख्या-वाचक विशेषण

गणना बोधक—

अेक —अेक बसी मण मग ।
अेकणि —अेकणि चोट भराय ।
बे —बे भाई विरदाम ।
बि-बि —बि-बि खणां चढि चार हुमे बि-बि खप्प ।
तीन —तीन पीहर हाथू के महाराज जसराज ही सहै ।
तिण्ह —च्यारि राणी तिण्ह बणावि ।
चुर —चर हर चुर चुवखे पिया ।
चव —चवधाह धाह चीय राह चडि ।
च्यारि —च्यारि राणी तिण्ह बणाय ।
पंच —इनी पंच जी पै महासुर धेहा ।
खट —खट भाव चाण ।
छह —छह रिति मच रस निमरि मावै ।
छ —छ खण्ड मुरधाण ।
सात —सात समंद फिर आठ ।
सपत —छतीस रागणी सपत सुर ।
सुरपत —नवनिधि सुरपत जाणि ।
आठ —आठ असुर गज अेक ।
— आठ नायिक माला ।

नव —कर्या मारि हरै जिके नव खंड ।

बारह —बारह बरस मु हवा मापे निरकाप करै ।

तेरह —सिरमार तेरह सबल ।

सोल —सोल सिकार बसी ।

सोळह —सोळह सिणगार रंग प्रेम का मद ।

इकीस —नर पैरह इकीस ।

बीस —छत्तीसं हुए बीस टंकी कमाई ।

तेतीस —तेतीस कोडि देवता ।

छतीस —छतीस वंस हिन्दू सरजीत करि ।

पचीस —पचीस पातिस बाजै सै ।

छतीस —भेळा वंस छतीस ।

बीससै —करी मरद बीस-सै पुराम करजं ।

बावन —चौसठि जोगणी बावन वीर ।

बासठि —बासठि हजार फौजां रा मोज महार ।

चौसठि —चौसठि जोगणी बावन वीर ।

सठी —सठी बम भाड बधा सब संग ।

चौरासी —चौरासी सिद्ध सिराकमाल हुआ है ।

लाखी —लाखे वाखि लाखी लिसा मंमकारं ।

लाखी —लाखी दल ऊजाडि ।

सवाया —पना सवाया बलणियां ।

लक्ख —दल सातल लक्ख मनैन्द्र दिया ।

लाख —लाख भाव रा माडीम ।

कोडि —तैंतीस कोडि ।

(घ) क्रम-बोधक

दूजो —कहियो बो दूजो करन ।

दूसरो —दूसरो मधुकर ।

तीजा —तीजा मा साथे दल समाज ।

तीजे —तीजे दिन रवि राहि ।

तीसरो —यो तीसरो महाभारथ ।

चौथा —चौथा पीहर आया ।
सातमे —पल सातमे पयासि ।
पनरोतर —पनरोतरै बरसि ।

(ङ) समूह वाचक विशेषण

दुइ —तुम सिरहर दुइ राह ।
दुवे —दुवे फौज फन्न गिरं गज्ज डाये ।
विहुं —साहिजादां विहुं सांमुहो ।
बिहा —मार्थ साहिजादां बिहा राज मांक ।
बिन्हे —मिपट बिन्हे फौज फौजां धणी चला हां ।
बेबे —बेबे मर्दकिम ।
बेहू —चंद सूरजि बेहू अवासी करै छे ।
बिन्हे —बिन्हे सीक ।
बसो —बोडा चढि बसी दिसि चाली ।
हजारां —हजारा मुहां माधि म्हे बीर हसर्फ ।

समास

वचनिका में समास भी पर्याप्त संख्या में प्रयुक्त हैं—वे दो-दो शब्दों के हैं। यथा—

सजा—खम्भ गज-पति हस्तिमार बोलाण-पवि धम-रह बोला-धणी, दल सिणगार बुध-बल्ल पुत्र-बलि, रा-बप्प मत-बल्ल मत राज रिण-खेत रिण-समंद प्रवसाण-सिद्ध रमा-रोल आदि ।

समास-रचना में कहीं कहीं विपर्यय भी हो गया है। यथा—
पति दिल्ली पति-अवन सत-हैम मिरामर आदि ।

शब्द-कोश

वचनिका के शब्द-कोश में संस्कृत के तत्सम अर्ध-तत्सम एवं तद्भव शब्द विदेशी (अरबी फारसी) शब्द और डिंगल के अपने विशेष शब्द परिलक्षित होते हैं। इसमें अनुरणनात्मक शब्द का प्रयोग भी हुआ है। विभिन्न प्रकार के शब्दों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१ तत्सम-शब्द

कवि कमल क्रीडा कण्ठ कटक दल देव तेज तप पवन पतिव्रता पूजा मनोरथ मानसरोवर विधि वेद-व्यास वैकुण्ठ विप्र वीर नर नृप सुर, गजराज तब अस, गजराज इन्द्र उत्तम आकार, प्रचार, धीराधिवीर आदि ।

२. अर्द्ध-तत्सम

अव तरप्प जुटै, प्राम रज बोम मामित्र प्रुणीयन, रिपि-लिपि सूर मित्र इव बल-निप, ब्रह्मंड गिर, सामिम्र समूस, सामन कुवरैव अपनि जयसोक भाउलोक आदि।

३ तद्भव

अपछरा, महलु बडाऊ, बैलु परसे पांति पोखिया जमाव, माण अमर्व पत्नी धूम, नेश, देह, समन्द समद्दर सरित सितल, किसन नयन्द, इन्द, मद, सामि बैठ आदि।

४ विदेशी-शब्द

अरस, अरज कूच कहर, महर कुवा अवाव तरफ, दीवाण दाबार सहर (शहर) जिहाज (जहाज) फुरमाण (फरमान) जोर (जोर) बहादूर (बहादुर) खिमहदामा जंग जुमा गैबा हूर, दर, तिल पुरजा पेश (पेश) राह हजार आदि।

अनुरणनात्मक शब्द

कमुम् कडक्कड बाबसै बाटवारी यरमर मममम घर्मका भट्टम्भी भाभर, महरि डमड्ड घमम्मड रमझ्झम इमतमी समरझमि मडम्मण।

६ डिंगल भाषा में प्रयुक्त कुछ विशेष शब्द

अथाहि, माधुमाली मयमड मणखंभ, मणमोह, मत्री, मगड मनमन्य मयलीयाण मर्ठंबप भरिसाण, मयमड माडवी माथीफरे, मापमली ऊभरती, मोतकणो, भीमाड, रूठे कवमणी किमरक कोरंभ बाजती बतंप, बीम महूबड मरट्ट माहती पूबकती, नोस नवचाल भयाहुरी बकचंड बम्बीय वापडी चीरंम, मल देलि बणमेठ बरीबै, कार्वति भड भाराम मीड डम्बार छिनारी, डुम्याल, बोली घर्मका मायस घूमणो निरंग पई पठाम पडियाइण, चारती, मौचाली बटकी बीह, मतलाट ममसेट मस्हबणी मारी, रहरांण, पड़िल खड़िगल बागैत विधू सती विरोल बजारी माको सूबली सूरमी हुवाली, डाम डुम्म कमल डोमणी आदि।

तुलनात्मक अध्ययन

राजस्थानी का पद्य साहित्य जितना परिमार्जित प्रौढ़, वैविध्य-पूर्ण विविध शैली संपन्न एवं विस्तृत है, उतना ही इसका गद्य-साहित्य भी। विक्रम की १४ वी शती तक आते-आते हमें राजस्थानी गद्य के प्रथम दर्शन होने लगते हैं, जिसकी परम्परा आज तक किसी न किसी रूप मे अक्षुण्ण बनी हुई है।

राजस्थानी-गद्य के रचयिताओं ने धर्म दर्शन इतिहास, गणित ज्योतिष वैद्यक टीका-टिप्पण, अनुवाद आदि सभी को अपना विषय बनाया है। लोकरंजनकारी मनोरंजक बातों ख्यातों आदि में तो राजस्थानी-गद्य सतत विकासमान रहा है। इसकी प्रारंभिक कृतियां जहां हमें हिन्दी की अभिव्यक्ति-प्रणाली वाक्य-संगठन विन्यास आदि को समझने में सहायक हैं वहीं इसके विकास-काल की कृतियां आधी हिन्दी-गद्य के स्वरूप एवं उसके विकास-पथ की दिशा-संकेत देती हुई प्रतीत होती हैं।

राजस्थानी पद्य-धारा का जो विकासोन्मुखी प्रवाह अचलदास खीची री वचनिका में दृश्यमान है वह दो-ढाई शताब्दियों तक गद्य-काव्य-धारा को अभिसिंचित करता हुआ 'रा० रतनसिंघजी महेसदासोत री वचनिका' में अपने पूरे ओज उत्कर्ष के साथ प्रकट हुआ है—वीरों का वर्णोक्तियों में घु घमसान ही कर वह्नों की टंकारों में बजता हुआ सतीत्व की स्वर्णमलोज्ज्वली ज्योत में करुणा-रस बन कर जातीय आदर्शों की रक्षार्थ बली होने वाले योद्धे शुर वीरों के चरणों में श्रद्धांजली स्वरूप चढ़ गया है।

गाडण शिवदास और खिड़िया जगा चारणी-भावाभिव्यंजित राजस्थानी के लोकप्रिय साहित्य-सृजक हैं—उनकी कृतियां क्षत्रियों के जातीय अभिलेखों के रूप में समादृत रही हैं। एकाधिक दृष्टि-बिन्दुओं में ये दोनों रचयिता समान धरातल पर प्रतिष्ठित गोचर होते हैं।

दोनों वचनिकाकारों के विषय में किंवदंतियां प्रचलित हैं कि वे अपने-अपने आश्रयदाताओं के साथ रण में जूझ जाते मात्र अपने स्वामियों बलि-जीवन स्तम्भ पर काव्य रूप कीर्ति-कलश चढ़ाकर उनको अमरत्व प्रदान करने हेतु जीवित रह गये थे। दोनों रचयिताओं का लक्ष्य अपने वीर-आश्रयदाताओं का कीर्ति-स्तवन ही है।

दोनों की काव्य प्रतिभा इतिहास वीथिकाओं में रमण करती हुई जहां एक ओर काव्य रसिकों में ब्रह्मानन्दानुभूति का संचार करती हुई आर्य-धर्म और संस्कृति का

क्योंकि मंच पूरा करता है वहीं दूसरी ओर तत्वान्वेषी इतिहासकार को तमसाच्छन्न विस्मृत प्राय ऐतिहासिक कड़ियों को जोड़ने का सामर्थ्य भी प्रदान करती है ।

राजस्थानी वीर-काव्य-परम्पराओं से समृद्ध दोनों रचनाएं युद्ध-काव्य हैं जिनमें न केवल स्वपक्ष का बल प्रताप, शौर्य ओज वर्णित-व्यंजित हुए हैं अपितु विरोधी पक्ष के शक्ति-सामर्थ्य आदि का भी विस्तृत वर्णन हुआ है । इस दृष्टि से दोनों ही वर्णन प्रधान रचनाएं हैं । युद्ध के पूर्व और नायक द्वारा स्वपक्षीय योद्धाओं से अभिमंत्रणा का आयोजन उन्मत्त मरणातुर वीरों का अनुभाव-चित्रण जौहर अनुष्ठान एवं अंत में नायक की प्राणाहुति के दृश्य दोनों में ही समान से चित्रित हुए हैं । इस प्रकार दोनों वचनिकाएं उत्कृष्ट वीर-काव्य हैं—दोनों का अंगीरस 'वीर' है । करुण रस के छींटे दो एक स्थल पर दोनों रचनाओं में हैं जिनके स्पर्शानुभव से सहृदय की पलकें भीग जाती हैं ।

न केवल भाव भूमि की दृष्टि से अपितु शैली-स्वरूप अथवा रचना शिल्प के विचार से भी दोनों वचनिकाकार एक ही मार्ग का अनुसरण करते हुए चले हैं । वचनिका-शैली में रचित राजस्थानी कलात्मक गद्य की तुक-ताल में गुम्फित-काव्य सौरभ से दोनों रचनाओं के पृष्ठ सुवासित हैं ।

चारण शिवदास अपेक्षाकृत पूर्ववर्ती कवि है—फिर भी उसकी प्रतिभा ने दो शताब्दियों बाद रचना करने वाले समर्थ कवि जगा खिड़िया को दूर तक प्रभावित किया है । यह मान्य है कि दोनों वचनिकाओं के इतने अधिक साम्य का कारण दोनों निवेदित एक सी ऐतिहासिक घटनाएं हैं, फिर भी अपनी रचना शैली के लिए जगा निश्चित ही शिवदास का ऋणी है । इतना स्वीकार करने पर भी जगा पर शिवदास का अंधानुकरण करने का दोषारोपण नहीं किया जा सकता । शिवदास की रचना से जगा के अन्तर भेद का निरूपण इस प्रकार किया जा सकता है—

जगा की रचना भाव-संकुल होते हुए भी वर्णन-प्रधान है । शिवदास में अपेक्षाकृत भाव प्रधान है ।

विविध वर्णनों से जगा की वचनिका के कला-पक्ष में श्लाघनीय निखार आ गया है यद्यपि इन वर्णनों से कथा प्रवाह में थोड़ा विराम अवश्य आया है । शिवदास की वचनिका में कला-चमत्कार का एक दम अभाव है—उसकी कथा में किसी प्रकार का कोई अवरोध नहीं है ।

जगा ने वीर के साथ ही शृंगार रस का भी वर्णन किया है, जिस पर स्पष्ट ही रीति-कालीन प्रभाव है—शिवदास की वचनिका में शृंगार रस का नाम भी नहीं है—हां करुणा के प्रसंग दोनों में हैं ।

रत्नसिंह की मृत्यु के पश्चात स्वर्ग में उसके अभिनन्दन आदि का सविस्तार वर्णन करके जग्गा ने अपनी वचनिका मे काल्पनिक अंश का समावेश कर दिया है। सिवदास ने यथार्थ को ही ग्रहण किया है।

जग्गा एक कलाकार कवि है। उसकी वचनिका का भाव-पक्ष जितना मधुर है उतना ही उसका कला-पक्ष भी उज्ज्वल है। उसका गद्य भी काव्य सा रम्य और रोचक है। इसके विपरीत सिवदास नैसर्गिक भावना का सरस कवि है यद्यपि उसकी कविता का कलापक्ष किसी भी प्रकार से हेय नहीं है फिर भी उसने उसे सजाने की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यही कह सकते हैं कि दोनों कवि समान भाव भूमि पर समान-शैली में रचना करके भी पृथक-पृथक महत्व के अधिकारी हैं। तुलना द्वारा एक को दूसरे से बड़ा या छोटा कवि सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस अवसर पर इतना ही कहा जा सकता है कि सिवदास द्वारा निरूपित राजस्थानी की वचनिका शैली जग्गा के हाथों में पड़ कर विकासोन्मुख ही हुई है।

परिशिष्ट २

टीका-व्याख्या के रूप में लिखित जैन वचनिकाएं।

१ अखैराजजी गोदिका—सांगानेर निवासी

१ भावदीप वचनिका।

२. टोडरमल—जन्म सं० १७९३।

२ गोम्मटसार की वचनिका।

३ आत्मानुशासन वचनिका—यह ग्रन्थ भर्तृहरि के वैराग्य शतक के ढंग का है।

४ पुरुषार्थ सिद्धयुपाय की वचनिका जिसे पं० दौलतराम ने पूर्ण किया।

३ दौलतराम, बसवाग्राम निवासी—जो अनुमानतः सं० १८३० वि० तक विद्यमान थे।

५ हरिवंश पुराण (१८२९) की वचनिका।

६ पुण्यास्रव वचनिका (१७७७)।

७ परमात्म प्रकाश वचनिका।

८ श्रीपाल चरित वचनिका।

९. वसुनंदि श्रावकाचार (प्राकृत) की वचनिका।

४ मन्नालालजी सांगा—जन्म सं० १८११

१० चारित्रसार की वचनिका (माघ शु० ५ सं० १८७१ में पूर्ण)।

११ पद्मनंदि की वचनिका (अपूर्ण)।

५. केसरी सिंहजी

१२ वर्द्धमान पुराण वचनिका (१८७३)।

६ देवीदासजी

१३ सिद्धान्तसार संग्रह वचनिका } सं० १८४४।

१४ तत्वार्थ सूत्र वचनिका। } सं० १८४४।

७ जयचन्द्रजी छाबड़ा—जयपुर

१५. प्रमेय रत्नमाला की वचनिका (१८६१)।

८ बखतरामजी—१९वीं शताब्दी के अंत में विद्यमान थे

१६ धर्म बुद्धि कथा वचनिका।

१७ मिथ्यात्व खण्डन नाटक वचनिका।

९. शिवलालजी जयपुर निवासी
- १८ रत्न संग्रह वचनिका।
- १९ चर्चा संग्रह वचनिका।
- २० नय चक्र वचनिका।
- २१ उमास्वामी कृत श्रावकाचार वचनिका।
- २२ तेरह पंथ खंडन और वचनसार वचनिका (सं० १९१२)

१० नाथूरामजी दोसी–जयपुर निवासी जन्म १९वीं शती उत्तरार्द्ध मृ० सं० १९०५
- २३ सुकुमाल चरित्र वचनिका।
- २४ नयचक्र वचनिका।
- २५ षोडश कारण जयमाल वचनिका।
- २६ दश लक्षण रत्नत्रय जयमाल वचनिका।
- २७ नन्दीश्वर अष्टाह्निका कथा वचनिका।
- २८ समाधि मरण वचनिका।

११ सदासुख जयपुर निवासी जन्म १८५२ मृ० सं० १९२३
- २९ अकलंकाष्टक वचनिका।
- ३० मृत्यु महोत्सव वचनिका।
- ३१ समय सार वचनिका।

१२ पारसदासजी निगोत्या–जयपुर मृत्यु सं० १९३६
- ३२ सार चतुर्विंशतिका वचनिका।

१३ दीपचन्द–आमेर
- ३३ अनुभव प्रकाश वचनिका।

१४ पन्नालाल संघी–जन्म सं० १८७१ मृत्यु ज्येष्ठ कृष्णा १० सं० १९४०।
- ३४ तत्वार्थ सूत्र वचनिका।

१५ फतहलालजी जयपुर
- ३५ न्याय दीपिका और तत्वार्थसूत्र की वचनिकाएं।

१६ स्वरूपचन्द बिलाला
- ३६ मदन पराजय वचनिका (सं० १९१८)।

१७ रायमलजी
- ३७ चरचा ग्रंथ वचनिका।
- ३८ श्रावकाचार वचनिका।

१८ जौहरी लाल शाह : रचना काल सं० १९१५

३९ सम्मेद शिखर पूजा वचनिका।

४० पद्मनन्दी पंचविंशतिका वचनिका।

१९ नन्दलाल छाबड़ा

४१ मूल मूलाचार की वचनिका।

२० जयचन्द्रलाल छाबड़ा

४२ भक्तामर स्तोत्रवचनिका।

२१ रूपचन्द

४३ समयसार वचनिका।

इसके अतिरिक्त श्री नेमीचन्द्र शास्त्री ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी जैन-साहित्य परिशीलन' भाग २ पृ० २१२-१४ पर कुछ और वचनिकाओं के नाम गिनाए हैं।

सहायक ग्रन्थ सूची

१ अपभ्रंश-साहित्य — डा० हरिवंश कोछड़

२ किसन रुकमणी री वेलि (भूमिका मात्र) — प्रो० नरोत्तमदास स्वामी

३ कीर्तिलता — संपा० डा० बाबूराम सक्सेना

४ चन्द बरदाई और उनका काव्य — डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी

५ छन्द प्रभाकर — जगन्नाथ 'भानु'

६ डिंगल में वीर रस — पं० मोती लाल मेनारिया

७ राजस्थानी गद्य साहित्य का इतिहास और विकास (अप्रकाशित) — डा० शिवस्वरूप शर्मा अचल

८ राजस्थानी भाषा और साहित्य — पं० मोती लाल मेनारिया

९ राजस्थान के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज भाग १ — पं० मोती लाल मेनारिया

१० राजस्थानी साहित्यकारों का परिचय — प्रकाशक—स्वागत समिति १२ वां अधिवेशन अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन जयपुर

११ वीर रस का शास्त्रीय विवेचन — बटे कृष्ण

१२ वीर सतसई (भूमिका मात्र) — डा० कन्हैयालाल सहल

१३ संस्कृत गद्य वल्लरी — प्रो० नरोत्तमदास स्वामी

१४ संस्कृत साहित्य का इतिहास — बलदेव उपाध्याय

१५ हिन्दी साहित्य का इतिहास — आ० रामचन्द्र शुक्ल

१६ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — डा० रामकुमार वर्मा

१७ हिन्दी साहित्य का आदिकाल — डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

१८. हिन्दी जैन-साहित्य परिशीलन भाग २ — नेमी चन्द्र शास्त्री

१९. हिन्दी वीर-काव्य — डा० टीकमसिंह तोमर

२० हिन्दी काव्यालंकार सूत्र (वृत्ति) — संपा० डा० नगेन्द्र

२१ हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर — ए० बी० कीथ

२२ इन्ट्रोडक्शन टु प्राकृत कोशग्रन्थ — ए० सी० वुलनर

२३ उर्दू-हिन्दी कोश — संपा० मुहम्मद मुस्तफा

२४ हिन्दी साहित्य कोश — संपा० डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि

राजस्थानी भाषा के ग्रंथ

२५. केहर प्रकाश	कविवर बख्तावर
२६ रघुनाथ रूपक	मंछ कवि
२७. रघुवर जस प्रकाश	संपा॰ सीताराम लालस
२८ राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग १	संपा॰ प्रो॰ नरोत्तमदास स्वामी
२९. वचनिका रा॰ रतनसिंघजी री महेसदासोतरी	संपा॰ डा॰ टैसीटोरी
३० वचनिका रा॰ रतनसिंघजी री महेसदासोतरी	संपा॰ काशीराम शर्मा एवं डा॰ रघुबीरसिंह
३१ अचलदास खीची री वचनिका	(हस्तलिखित) शिवदास चारण
३२ अचलदास खीची री वचनिका	संपा॰ शीतानाथ शास्त्री
३३ अचलदास खीची री बात	(हस्तलिखित)

इतिहास ग्रंथ

३४ उदयपुर राज्य का इतिहास	डा॰ गौरीशंकर हीराचंद ओझा
३५ वीर-विनोद	कविराजा श्यामलदास
३६ मारवाड़ राज्य का इतिहास	जगदीशसिंह गहलोत
३७. रतलाम का प्रथम राज्य	डा॰ रघुबीरसिंह
३८. हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब १ २	डा॰ यदुनाथ सरकार
३९. औरंगजेब (हिन्दी)	डा॰ यदुनाथ सरकार
४० राजस्थान	कर्नल टॉड
४१ इण्डियन एफीमेरीज	एस॰ के॰ पिल्लई
४२ निजामुद्दीन कृत 'तबकात-ए-अकबरी'	अंग्रेजी अनुवाद खण्ड ३
४३ तारीख-फ़रिश्ता' ब्रिग्ज कृत	अंग्रेजी अनुवाद खण्ड १, ४
४४ याहया कृत 'तारीख-ए-मुबारकशाही	अंग्रेजी अनुवाद

पत्र-पत्रिकाएँ

राजस्थान भारती भाग ५ अंक १ जनवरी १९५६
राजस्थानी भाग २
शोध-पत्रिका वर्ष १२ अंक २ दिसम्बर १९६०
जरनल ऑफ दी रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल न्यू सीरीज १० सन १९१४
ए डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग ऑफ बार्डिक एण्ड हिस्टॉरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स
पोर्ट सेक्शन बार्डिक पोइट्री भाग १ बीकानेर स्टेट

राजस्थानी भाषा के ग्रंथ

२५. केहर प्रकास

२६ रघुनाथ रूपक — कविवर बख्तावर

२७ रघुवर जस प्रकास — मंछ कवि

२८ राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग १ — संपा० सीताराम लालस

२९ वचनिका रा० रतनसिंघजी री महेसदासोतरी — संपा० प्रो० नरोत्तमदास स्वामी

३० वचनिका रा० रतनसिंघजी री महेसदासोतरी — संपा० डा० टैसीटोरी

संपा० मथुराप्रसाद शर्मा एवं डा० रघुवीरसिंह

३१ अचलदास खीची री वचनिका — (हस्तलिखित) शिवदास चारण

३२ अचलदास खीची री वचनिका — संपा० दीनानाथ खत्री

३३ अचलदास खीची री बात — (हस्तलिखित)

इतिहास ग्रंथ

३४ उदयपुर राज्य का इतिहास

३५ वीर-विनोद — डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा

३६. मारवाड़ राज्य का इतिहास — कविराजा श्यामलदास

३७. रतलाम का प्रथम राज्य — जगदीशसिंह गहलोत

३८. हिस्ट्री ऑव औरंगजेब १ २ — डा० रघुवीरसिंह

३९ औरंगजेब (हिन्दी) — डा० यदुनाथ सरकार

४० राजस्थान — डा० यदुनाथ सरकार

४१ इण्डियन एफीमेरीज — कर्नल टॉड

४२ निजामुद्दीन कृत 'तबकात-ए-अकबरी' — एल० के० पिल्लई

४३ तारीख-फरिश्ता' बिग्ग कृत — अंग्रेजी अनुवाद खण्ड २

४४ याहया कृत 'तारीख-ए-मुबारकशाही' — अंग्रेजी अनुवाद खण्ड १ ४

अंग्रेजी अनुवाद

पत्र-पत्रिकाएँ

राजस्थान भारती भाग ५ अंक १ जनवरी १९५९

राजस्थानी भाग २

शोध-पत्रिका वर्ष १२ अंक २ दिसम्बर १९६०

जरनल ऑव दी रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल भाग १२ वर्ष १९१६

ए डिस्क्रिप्टिव केटलॉग ऑव बार्डिक एण्ड हिस्टॉरीकल मैनस्क्रिप्ट्स पॉर्ट सेकण्ड बार्डिक पोइट्री भाग १ बीकानेर स्टेट
